

वैदिकवार्ता

सितम्बर १९६२

सुवर्ण मंदिर अमृतसर



५० नये पैसे

वर्ष
४३

वैदिक धर्म अंक ९

क्रमांक १६४ : सितम्बर १९६२

संपादक

पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

विषयानुक्रमिका

- १ सुख देनेवाला हो (वैदिक प्रार्थना) ३२५
- २ स्वाध्याय-मण्डल वृत्त ३२६
- ३ कः प्रजापति डॉ. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल ३२७
- ४ परमेश्वरमें अनन्य आस्था
मूल ले.- श्री मानुशंकर जोषी, अनु.- हं० मू० रोय ३३१
- ५ परीक्षार्थियोंके लिये स्वर्णावसर ३३२
- ६ स्वाध्यायान्मा प्रमद श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी ३३३
- ७ मूर्तिपूजापर एक दृष्टि
श्री भगवानराव आर्य भोसोकर ३३६
- ८ चारों वेदोंका सुबोध अनुवाद ३३८
- ९ वेद और वेदान्त श्री अरुणकुमार शर्मा ३४५
- १० १९ सितम्बरको ज-मदिनके शुभावसरपर
श्री. पं. श्री. दा. सातवलेकर
श्री भुतिशील शर्मा ३४७
- ११ 'हमारी-प्रतिष्ठा' श्री कृष्णलाल बजाज 'प्रदीप' ३४८
- १२ दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?
श्री पं. श्री. दा. सातवलेकर ५७-७१

संस्कृत-पाठ-माला

(चौबीस भाग)

[संस्कृत-भाषाके अध्ययन करनेका सुगम उपाय]

इस पद्धतिकी विशेषता यह है—

भाग १-३ इनमें संस्कृतके साथ साधारण परिचय करा दिया गया है ।

भाग ४ इसमें संधिविचार बताया है ।

भाग ५-६ इनमें संस्कृतके साथ विशेष परिचय कराया है ।

भाग ७-१० इनमें पुष्टिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंगी नामोंके रूप बनानेकी विधि बताई है ।

भाग ११ इसमें " सर्वनाम " के रूप बताये हैं ।

भाग १२ इसमें समासोंका विचार किया है ।

भाग १३-१८ इनमें क्रियापद-विचारकी पाठविधि बताई है ।

भाग १९-२४ इनमें वेदके साथ परिचय कराया है ।

प्रत्येक पुस्तकका मूल्य ॥) और डा. व्य. ८,
२४ पुस्तकोंका मूल्य १२) और डा. व्य. ११)

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो. ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सुरत]

“ वैदिक धर्म ”

वार्षिक मूल्य म. आ. से ५) रु.

बी. पी. से रु. ५-६२, विदेशके लिये रु. ६-५०

डाक व्यय अलग रहेगा ।

मन्त्री— स्वाध्याय-मण्डल,

पो.- ' स्वाध्याय-मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सुरत]

ॐ

भाद्रपद : विक्रम संवत् २०१९

वैदिकधर्म

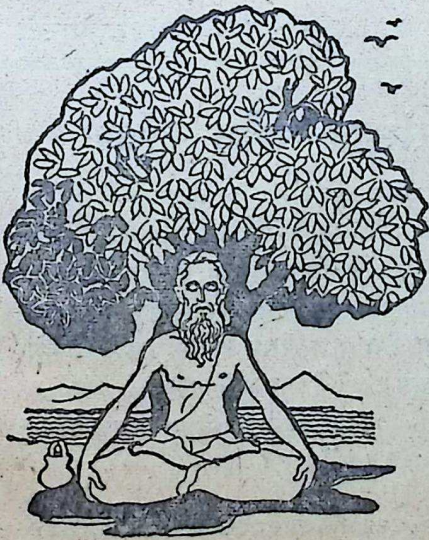
सुख देनेवाला हो !

भवा वरूथं गृणते विभावो
भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म ।
उरुष्याग्ने अहंसो गुणन्तं
प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥

ऋ. १/५८/९

हे (विभावः) विशेष प्रकाशमान जग्ने । (गृणते वरूथं भव) । स्तुति करनेवालेके लिये कवचके समान संरक्षण करनेवाला तू हो । हे (मघवन्) धन युक्त जग्ने ! (मघवद्भ्यः शर्म भव) धनवानोंका तू घरके समान संरक्षण कर । हे जग्ने ! (गुणन्तं अहंसः उरुष्य) स्तुति करनेवालोंका तू पापसे संरक्षण कर, (प्रातः मक्षू) प्रातःकाल शीघ्र ही (धिया वसुः जगम्यात्) बुद्धिमान जग्ने हमारे समीप जा जावे ।

हम प्रातःकाल जग्नेको प्रदीप्त करके उसकी उपासना करें । वह जग्ने स्तुति करनेवालोंका संरक्षण करे, धनवानोंका उत्तम रक्षण करे, स्तुति करनेवालोंको पापी मार्गसे बचाकर पुण्यके मार्गसे ले जावे । इस तरह वह सबकी उन्नति करे ।





स्वाध्याय-मण्डल वृत्त

वेदमुद्रणनिधि— इस मासमें वेदमुद्रणनिधिमें आगे दियेके प्रमाण रकम जमा हुई है—

श्री. हरकीशनभाई छीवाभाई, पारडी	२१-२५
„ विष्णु लक्ष्मण रानडे, घाटकोपर-मुंबई ७७	५
„ लल्लु नारायण अंड कुं., के के	६६-२५
„ बाळकृष्ण फडके, नासिक	५
„ वासुदेव शिवराम नालै, एरंडोल	५
„ ल. वा. भावे, वरोरा	२
„ पालयेशास्त्री, मुंबई १४	१०
„ नारणलाला कंसारा,	४८०

आशीर्वाद टिकीट

श्री. भीकृष्ण यमासा प्रा. लिमीटेड, सिन्नर	२१
„ त्र्यंबक नारायणराव राजेवहादुर, नासिक	१०
„ प्रल्हादसा लहानुसा क्षत्रिय, संगमनेर	१०
„ मे. विश्वनाथ बळवंत वैद्य	१०
„ डॉ. व्ही. बी. सराफ,	१०
„ मोहिनीराज कृष्ण कोन्हाळकर, कोपरगांव	१०
„ नारायण धोंडो नानल, अहमदनगर	१०
„ एन्. बी. देजपांडे, धुळे	१०
„ वासुदेव गजानन ओक	१०
„ डॉ. शकुन्तला पोंक्षे, नवसारी	५
„ गोवर्धनदास भीकरीदास, गुजराथी चौपडे	५
„ व्ही. एम्. आपटे, धुळे	५
„ रवीवसरा बुकस्टॉल	५
„ अरविंद आदल कंपनी	५
„ रामेश्वर पोतदार	५
„ केशव रघुनाथ गरुड, अहमदनगर	५

श्री. नरहरपंत जाखडी, सिन्नर	३
„ भाल. पाटणकर	२
„ भगवंत शिवराम भीडे, नासिक	२
„ कृष्णाजी गोपाळ कुलकर्णी	२
„ डॉ. मेथा, कोपरगांव	२
„ स. गो. चिंधडे, मालेगांव	२
„ वासुदेव बळवंत कोटणिस, मालेगांव	२
„ रा. वि. कर्वे, नवसारी	५

कुल रु. ७५०.५०

पूर्व प्रकाशित रु. १,१९,९९९.०३

कुल जमा रु. १,२०,७४९.५३

हिंदी, गुजराती और मराठी वेदानुवादमुद्रणका कार्य चल रहा है।

मंत्री- स्वाध्यायमंडल, पारडी

‘ संस्कृत-साकेत पाक्षिक ’

अयोध्या जल्लिख भारतीय विद्वत्समिति परीक्षा परिषद् द्वारा संस्कृत-साकेत पत्र पाक्षिक रूपमें १९२० ई. से ही प्रकाशित हो रहा है। यह संस्था सुरभारती देवभाषा संस्कृतका अपनी परीक्षा और पत्र द्वारा भारतके कोने-कोनेमें प्रचार कर रही है। विशेष विवरणके लिये परीक्षा मन्त्री- ‘ विद्वत्समिति, अयोध्या ’ इस पत्रेपर पत्रव्यवहार करें।

कः प्रजापति

[डा. श्री वासुदेवशरणजी अग्रवाल, काशी हिंदु विश्वविद्यालय]

सृष्टिका अग्रिम तत्त्व प्रजापति है

तद्यदब्रवीत् प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पाल-
यस्वेति तस्मात्प्रजापतिरभवत् तत्प्रजापतेः
प्रजापतित्वम् (गोपथ ब्रा० १।१४)

विश्वका नित्य आधार, उपादान और तत्त्व ब्रह्म है। वही तो सृष्टिके लिए प्रजापति बनता है। विश्वको वैदिक भाषामें 'इदं सर्वं' या 'प्रजा' कहा गया है। उसका ईश प्रजापति है। सृष्टिकी प्रक्रिया देश और कालमें अभिव्यक्त हो रही है। उसका जो आलंबन है वह वैदिक भाषामें अधिष्ठान कहा गया है। उसका जो उपादान है उसकी वैदिक संज्ञा आरम्भण है। विश्वके निमित्त कारणके लिए वेदमें प्रमण शब्द है। निम्नलिखित मंत्रमें आरम्भण, आस्थान और प्रमण ये तीनों शब्द प्रयुक्त हुए हैं—

अनारम्भणे यदवीरयेथामनास्थाने अग्रमणे
समुद्रे । (ऋ० १, ११६, ५)

यहां समुद्रसे तात्पर्य उस अव्यक्त दशासे है जिसमें किसी भी कारणका पृथक् जाविर्भाव नहीं होता। उसे ही पुराणोंमें 'एकार्णव' और वेदमें 'आपः', 'सलिलम्', 'अरम्भः' या 'समुद्र' कहा गया है। अधिष्ठान और आस्थान पर्यायवाची हैं, जो विश्वके आलंबनके लिए प्रयुक्त होते हैं। जैसा निम्नलिखित मंत्रमें आया है—

किं सिद्धासीदधिष्ठानमारम्भणं क्तमत्स्वि-
त्कथासीत् । यतो भूर्मि जनयन्विश्वकर्मा वि-
द्यामीर्णोन्महिना विश्वचक्षाः । (ऋ० १०, ८१, २)

अर्थात् इस विश्वका अधिष्ठान कोई विलक्षण तत्व था। इसका आरम्भण या उपादान कौन था? इसका निमित्त कैसा था— जहांसे विश्वदर्शी विश्वकर्मणि पृथिवी और धुलोकको अपनी महिमासे प्रकट किया?

इन मंत्रोंमें जो तीन पारिभाषिक शब्द हैं उनको स्पष्ट-
तासे यों समझा जा सकता है—

(१) अधिष्ठान— आस्थान— आलम्बन— अव्यय
ब्रह्म— प्रज्ञान या मनोमय पुरुष

(२) अग्रमण (ग्रहण करने या पकड़नेवाला)—
निमित्तकारण—अक्षर ब्रह्म—प्राणमय पुरुष

(३) आरम्भण— उपादानकारण— क्षर ब्रह्म—भूत
या वाङ्मय पुरुष (वैदिक भाषामें पंचभूतोंकी
संज्ञा वाक् है क्योंकि भूतोंमें सर्वाधिक सूक्ष्म
आकाशका गुण शब्द या वाक् है ।)

प्रजापति ही चतुष्पाद ब्रह्म है। उसके तीन पाद विश्वका त्रेधाभाव या त्रिक हैं। उसका चौथा पाद वह है जो सृष्टि में नहीं जाता और अव्यक्त बना रहता है। वैदिक शब्दा-
वलीमें उस अव्यक्त या अनिरुक्त प्रजापतिकी अनेक संज्ञाएं हैं। जैसे,

(१) गर्भ प्रजापति

(२) गुहा प्रजापति

(३) हृदय प्रजापति

(४) नामि या नम्य प्रजापति

(५) उक्थ प्रजापति

(६) अव्यक्त प्रजापति

(७) केन्द्र प्रजापति

(८) अग्र प्रजापति

(९) एकमेवाद्वितीय प्रजापति

(१०) का प्रजापति

(११) संप्रज्ञ प्रजापति

(१२) अनिरुक्त प्रजापति

(१३) जमूर्त प्रजापति

(१४) जसृत् प्रजापति

(१५) परोक्ष प्रजापति

(१६) अज या अजायमान प्रजापति

(१७) बोनि प्रजापति

(१८) ऊर्ध्व प्रजापति

- (१९) तत्प्रजापति
(२०) जसौ प्रजापति
(२१) तूष्णीं प्रजापति
(२२) एकपात् प्रजापति

इन शब्दोंके पीछे एक ही समान तत्त्व निहित है। संहिता, ब्राह्मण और पुराण अपनी-अपनी शैलीसे एक मूल भूत अव्यक्त तत्त्वकी भिन्न संज्ञाएं देते हैं। जैसे,

प्रजापतिश्चरति गर्भे अन्तरजायमानो बहुधा विजायते। तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ॥

(यजु० ३१।१९)

उभयश्चेतत्प्रजापतिर्निरुक्तश्चानिरुक्तश्च परिमितश्चापरिमितश्च (ऋतपथ ६।५।३।७)
क उ वै प्रजापतिः (कौषीतकी २९।७)
प्रजापतिवै कः (एतरेय २, ३८, ऋतपथ ६, ४, ३, ४)

प्रजापतिके दो रूप हैं। एक अजायमान अर्थात् जो जज या अजन्मा है वही गर्भ प्रजापति कहलाता है। अव्यक्त या गर्भसे ही प्रजापतिका वह रूप प्रकट होता है जिसे 'बहुधा' या 'विजायमान' कहते हैं। इसीकी संज्ञा पुरुरूप या विश्वभुवन होती है। यद् विश्वभुवन जिस अव्यक्त मूल स्रोतमें अंतर्निहित रहता है वही योनि प्रजापति है।

ऋतपथके अनुसार प्रजापतिके दो रूप हैं— अनिरुक्त और निरुक्त। अर्थात्, एक शब्दातीत है दूसरा शब्दब्रह्म। उसका एक रूप परिमित है, दूसरा अपरिमित। विश्व परिमित रूप है और विश्वातीत रूप अपरिमित या असीम है। जो मात्रा या मापके अधीन हो वह परिमित होता है। जिसकी मात्रा नहीं वह अमात्रक या अपरिमित कहलाता है। मात्राको वैदिक भाषामें प्रमा भी कहते हैं। जिसकी प्रमा है वह बुद्धि या मनसे गण्य होता है। जो प्रमासे अतीत है वह मनसे भी अतीत रहता है। ऐसे प्रमाहीन प्रजापतिके लक्ष्य करके वैदिक भाषामें 'संप्रश्न' कहा गया है। संप्रश्न वह है जिसका कोई उत्तर नहीं, जो आदिसे अन्त तक पहुँची ही है। वह सदा-सदा प्रश्नचिन्ह बना रहता है। उस प्रश्नका समाधान आज तक नहीं हुआ, जागे भी शब्दों द्वारा संभव नहीं होगा। वह एक रहस्य है जिसे वेदोंमें 'अपीच्य' और 'गुह्य' भी कहा गया है। रहस्यकी ही संज्ञा गुहा है। अग्नि या

प्राणका जन्म रहस्यमय है। वैदिक भाषामें अग्नि गुहासे जन्म लेता है। जो मूल स्रोत है उसे ही नामि या केन्द्र भी कहा जाता है। उसकी संज्ञा 'उक्थ' है जहाँसे इदं सर्वं यह विश्व उत्थित होता है। ऊपरके मंत्रमें उसे ही गर्भ और योनि कहा है। गर्भमें वह अजन्मा है, उसके बाहर प्रकट होकर जन्म लेता है। वही एक बहुधा बन जाता है (बहुधा विजायते)। देश और कालसे परे होनेके कारण उसे 'अमृत' भी कहते हैं। जो देश और कालकी सीमामें आ जाता है वह सत्य बन जाता है। इदं सर्वं, विश्वभुवन, निरुक्त, प्रत्यक्ष, प्रजा ये सब सत्य हैं। देशसे सीमित हैं अतः इन पर कालका अंकुश है।

तैत्तिरीय ब्राह्मणमें कथा है कि प्रजापतिने देवोंके पीछे इन्द्रको बनाया और कहा-जाओ तुम इन देवोंके अधिपति बनो। देवोंने कहा—तुम हो कौन? इस तुमसे बड़े हैं। इन्द्र प्रजापतिके पास जाया और बोला—देव कहते हैं—तुम हो कौन? इस तुमसे बड़े हैं। प्रजापतिके पास वह तेज था जो आदित्यमें है। इन्द्रने कहा—अपना यह तेज मुझे दे दो तो मैं देवोंका अधिपति बन सकूँगा। प्रजापतिने कहा—इसे दे दूँ तो फिर मैं क्या रहूँगा। इन्द्रने कहा—तुम 'क्या' (कः) रहोगे। अतएव प्रजापतिकी संज्ञा 'क' है। इस ज्ञानसे इन्द्र देवोंका अधिपति बन गया।

(तैत्तिरीय ब्रा० २, २, १०, १-२)।

'क' प्रजापति ही परमेष्ठी है। क्योंकि वह सबसे परम है इसलिए उसे परमेष्ठी कहते हैं—

अयं वा इदं परमोऽभूदिति। तत्परमेष्ठिनः परमेष्ठित्वम्। य एवं वेद। पराममेव काष्ठां गच्छति, इति। (तैत्तिरीय ब्रा० २, २, १०, ५)

यज्ञमें जो जाहुति क प्रजापतिके लिए दी जाती है उसमें मंत्रका उच्चारण तूष्णीं या भीतर ही भीतर रहता है, बोलकर नहीं किया जाता। जिसका नाम या परिभाषा है वह वस्तु तत्त्वप्राणीकी होती है, जिसका नाम नहीं, जिसका रूप या परिभाषा नहीं वह प्रजापतिकी। वृत्तमें जो केन्द्र है वह क प्रजापतिका रूप है। उसका व्यास और परिधि विश्वभुवनका रूप है। केन्द्रके लिए वैदिक संज्ञा 'हृदय' थी। उसे ही गीतामें 'हृद्देश' कहा है। कठ उपनिषद्में हृद्देशकी ही अंतरात्मा, मध्यमात्मा या वामन कहा गया है। प्रतीक

भाषाओं अनिरुक्त जमूर्त या वामन प्रजापतिको ही जंगुष्ठ पुरुष कहते हैं। हृदय या केन्द्रमें रहनेवाला प्रजापति जंगुष्ठ पुरुष कहा जाता है। वही जब महिमा आवसे युक्त होकर मूर्त बनता है तब उसे चाक्षुष पुरुष कहते हैं।

हृदय या केन्द्रके लिए और भी एक उत्तम परिभाषा है। उसे 'ऊर्ध्व' कहते हैं। अव्यक्तकी संज्ञा ऊर्ध्व और व्यक्त या मंडल अधः है। ऊर्ध्व-अधः का लौकिक अर्थ ऊपर-नीचे है। किन्तु सृष्टिकी प्रक्रियाओं में ये सूक्ष्म और स्थूल, जमूर्त और मूर्त, अनिरुक्त और निरुक्त पूर्व और अपर होने सापेक्ष भावोंके द्योतक हैं। कठोपनिषद्में विश्वको सनातन जगत्स्थ वृक्ष कहा गया है जिसका मूल या स्रोत ऊर्ध्व (ऊपर) है और जिसकी शाखाओंका विस्तार अधः (नीचे) है—

ऊर्ध्वमूलोऽवाकशाख एषोऽश्चत्थः सनातनः
(कठ, ६, १)

इसे ही गीतामें अव्यय जगत्स्थ कहा है। वस्तुतः यह संसाररूपी वृक्ष दो भावोंकी समष्टि है। एक, अव्यय, सनातन और जमूर्त है, उसे ही हम अव्यक्त या क प्रजापति कहते हैं। वही इस विश्वका मूल आधार है। विश्वका दूसरा सापेक्ष भाव विकार, परिवर्तन और मृत्यु है। जिस प्रकार रथके पहिएमें उसका एक जविकल मध्य बिन्दु होता है और उससे नियंत्रित घूमनेवाली परिधि होती है, वैसे ही इस विश्वचक्र या ब्रह्मचक्रकी स्थिति है।

इन दोनों रूपोंको ही 'तत्' और 'एतद्' भी कहते हैं। प्रजापतिका प्रत्यक्ष रूप एतद् है। उनका परोक्ष रूप तद् है। एतद्वै तत् (यह वह है) के सूत्रके अनुसार जो विश्व है वही प्रजापति है। प्रजापति रूप पुरुष ही इस विश्व-यज्ञमें जाया है। विश्वमें नित्यकाल रूपी यूप प्रजापति रूप पुरुष बंधा हुआ है। प्रजापतिके दो रूप हैं। एक सहस्र-शीर्षा पुरुष और दूसरा दशांगुल पुरुष। सहस्रशीर्षा पुरुष अनन्त और जमूर्त है। प्रजापतिका जो रूप विश्वमें समाया हुआ है वही दशांगुल पुरुष है। जो सहस्रशीर्षा पुरुष है वह दशांगुल रूपमें प्रकट होता है, उसे छोटता नहीं। अर्थात्, प्रत्येक व्यष्टि समष्टिका ही आविर्भाव है। जघ्यात्म यज्ञ और अधि देवत यज्ञ दोनों प्रजापति पुरुषके समान हैं। इसको लक्ष्यमें रखकर पुरुष विधोवै यज्ञः कहा जाता

है। जैसा यह है वैसा ही वह है। जो प्रत्यक्ष है उसे यथा और जो परोक्ष है उसे तथा कहते हैं। यथा तथाके समान है—

यथा=तथा

एतद्=तद्

एतद्वै तत् कहें या यथा-तथा कहें भाव एक ही है। इसी यथा-तथा के नियमको याथातथ्य कहते हैं। प्रजापतिकी इस सनातन सृष्टिका विधान इसी याथातथ्य नियम के अनुसार हुआ है—

याथातथ्यतो अर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः
समाभ्यः ॥

प्रजापतिका अव्यक्त रूप अनिरुक्त या तूष्णीं है। वह शब्दसे जतीत है। उसका व्यक्त रूप निरुक्त या वाक्की परिधिमें जाता है। तूष्णींको ही 'उपांशु' कहते हैं—

स यदुपांशु तत् प्रजापत्यं रूपम् ॥

(शतपथ० १।१।३।२७)

जमिष्टोम यागमें सोमके चाकीस ग्रह सोम-पानके लिए प्रयुक्त होते हैं। उन सबका आध्यात्मिक अर्थ है। उनमें सबसे पहला ग्रह उपांशु कहलाता है। वह 'जंशु' रूप मूल प्रजापतिके जति संनिकट होनेके कारण ही उपांशु कहा जाता है। प्रजापतिकी जितनी अव्यक्त दिव्य शक्तियाँ हैं सब उपांशु ग्रहमें अनुस्यूत रहती हैं। जब भी व्यष्टिके केन्द्रमें प्राणका जन्म होता है तो सर्व प्रथम उस केन्द्रकी प्राणमि प्रजापतिकी अनिरुक्त या उपांशु शक्तियोंका ग्रहण करती है। यह शक्ति ही जमूर्त है जिसका उपभोग जन्म-पर्यन्त किया जाता है।

प्रजापतिकी एक संज्ञा 'हृदय' है। हृदयसे तात्पर्य उसी अव्यक्त केन्द्रसे है। हृदयके आधार पर ही मनकी प्रतिष्ठा होती है। मनको हृत्प्रतिष्ठ कहा गया है। मनके रूपमें ही सर्वप्रथम विश्व और व्यक्ति दोनोंका आविर्भाव होता है। मन ही संज्ञा या चेतनाका कारण है। मनके अनन्तर प्राण और फिर पंचभूतोंकी रचना होती है—

एष प्रजापतिर्यद्दृश्यम् । (शतपथ० ४।५।४।१)

यः प्रजापतिस्तन्मनः (जैमिनीय उ० ब्रा० १।३।१२)

विश्वकी रचनामें प्रजापतिकी कामना, तप और श्रम ये तीन कारण कहे गए हैं (खो अकामयत, स तपो अत-

(३३०)

वैदिक धर्म : खितम्बर १९६२

प्यत् सो अश्राभ्यत्) मनके व्यापारको कामना, प्राणके व्यापारको तप और वाक् या पंचभूतोंके व्यापारको श्रम कहते हैं। पंचभूतकी ही वैदिक संज्ञा वाक् है। इस महत्वपूर्ण परिभाषाको जान केना चाहिए। सूक्ष्मसे स्थूलकी ओर जाना ही सृष्टि है। सूक्ष्म भावोंका उत्तरोत्तर विकास स्थूल रूपमें होता है। इस प्रकार सब प्रथम महत्त्व या बुद्धिका उदय होता है। उसके धरातल पर जल या व्यष्टि केन्द्र जन्म लेते हैं। उससे पुनः पंचभूतोंका अपने सूक्ष्म और स्थूल रूपोंमें जन्म होता है। सूक्ष्मको तन्मात्रा और स्थूलको भूत कहते हैं। पंचभूतोंमें सबसे सूक्ष्म और प्रथम आकाश है। उसकी तन्मात्रा शब्द है। शब्द ही वाक् है। अतएव आकाशका जो गुण शब्द या वाक् है उसीको पांचों भूतोंका प्रतीक मान लिया जाता है। इसीको दृष्टिमें रखकर कहा गया है—

एतन्मयो वा अयमात्मा मनोमयो वाङ्मयः

प्राणमयः

(शत० १४।१।१०)

अर्थात् मन-प्राण और वाक् या पंचभूतोंकी समष्टि यही आत्मा है। मन-प्राण-वाक् ही प्रजापतिका विश्वमें जाया हुना रूप है। मनको जग्यय, प्राणको जक्षर और वाक् या पंचभूतोंको क्षर कहते हैं। जो स्थूल सृष्टि है उसे सामान्यतः वाक् कह दिया जाता है—

वाग्वैप्रजापतिः

(शतपथ ५।१।५।६)

प्रजापतिर्हि वाक्

(तैत्तिरीय १।३।४।५)

यहां एक और परिभाषाकी ओर भी ध्यान दिखाना आवश्यक है। जो परोक्ष और जमूत भाव है उसे 'देव' कहते हैं और जो प्रत्यक्ष दृश्य और स्थूल भाव है उसकी संज्ञा 'भूत' है। देव और भूत दोनोंके संमिलनसे चिन्मय विश्वका जन्म होता है। भूतको ही जसुर भी कहते हैं। देव ज्योति और जसुर तमका रूप है।

वेदोंमें प्रजापतिकी संज्ञा 'जग्नि' है। जग्निके दो रूप हैं— एक गुह्य, दूसरा यज्ञीय। जो गुह्य है उसे नभ्य भी कहते हैं अर्थात् वह प्रजापतिकी नाभि, हृदय या जमूर्त केन्द्रमें प्रविष्ट रहता है। उस जग्निके सिर नहीं है और पैर भी नहीं है। उसके आदि और अन्त दोनों सिरे छिपे हुए हैं (जपाद जक्षीर्षा गुह्यमानो जन्ता, ऋक्०)। जिसके सिर और पैर या विकासके दोनों सिरे नहीं होते उसीका

नाम वामन है। वही तो क प्रजापति है। वही केन्द्र जब दोनों ओर बढ़ता है तब उससे रेखा और परिधि बनती है। मानों वामन रूपी केन्द्र विराट् रूपसे जाता है।

इस प्रकार जो गुह्यानिहित जग्नि या प्राण है वह जग्नि-रुक् प्रजापतिका रूप है। वही जब यज्ञमें जाता है तब उससे तीन जग्नियोंका जन्म होता है। एकका तीन रूपोंमें प्रकट होना ही विष्णुका त्रेधा विक्रमण है। जहां-जहां यज्ञ-भाव है वहां त्रिक या त्रेधा भाव अवश्य विद्यमान रहता है। मन-प्राण वाक्, आहवनीय-दक्षिणाग्नि गार्हपत्य, अव्यय-जक्षर-क्षर इत्यादि त्रिकके अनेक रूप हैं। वे सब ही विश्वात्मक प्रजापतिके मूर्त भावको प्रकट करते हैं। उन्हींकी संज्ञा इदं सर्वं, विश्वभुवन या महिमा प्रजापति है। 'एतावानस्य महिमा' के अनुसार मन-प्राण-वाक् यही तो प्रजापतिकी महिमा है। जमूर्त प्रजापति एक है और महिमा प्रजापति बहुधा है। एक ही बहुधा भावमें जाता है। बहुधा भावको ही नामरूप भी कहते हैं। ऋग्वेदमें कहा है—

यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवना

यस्यन्या

(ऋ० १०।५२।३)

अर्थात् विश्वकर्मा प्रजापति देवोंको उनके अलग अलग नाम और रूप देता है। वे देव ही विश्वकी अनेक शक्तियां हैं। किन्तु वह प्रजापति स्वयं एक पहेली (संप्रश्न) बना रहता है। उस संप्रश्नमें सब नाम रूप छिपे हुए हैं। जो संप्रश्न या पहेली वह विश्वका महान् रहस्य है। वही इस प्रकारका तूष्णीं या मौन भाव है जिसमें सब शब्द अन्तर्हीन हो जाते हैं। मौन समुद्रके समान अगाध है। वाणी सरोवरके समान परिमित है। जो गुह्य संप्रश्न कोई एक मूल तत्त्व है वह अविज्ञात और अविज्ञेय है।

न तं विदाथ य इमा जजानान्यद् युष्माकम-

न्तरं बभूव। नीहारेण प्रावृता जहत्या चासुतृण

उक्थशासश्चरन्ति ॥

(ऋ० १०।५२।७)

जिसने इन सबको जन्म दिया है उसे तुम और न ही जानते हो। यद्यपि वह हम सबके भीतर है पर उसका कुछ और ही रूप दिखाई दे रहा है। उसके विषयमें जितनी चर्चा है वह सब कुहासे से छाई हुई है। जो मंत्रोंका गान करने-वाले हैं वे भी तो गा-गा कर वृक्षिका अनुभव नहीं करते।

विश्वके मूल स्रोतकी कल्पना एक समुद्रके समान की गई है। जितने देव या प्रकट शक्तियाँ हैं वे सब सर्व प्रथम उसी समुद्रमें लीन थीं। जब उस अगाध जलमें क्षोभ उत्पन्न हुआ तब मानों वे देवता नृत्य करने लगे और उनके पदाघातसे चंचल धूल उठ खड़ी हुई। उस धूलके परमाणु ही तो यह विश्व हैं—

यदेवा अदः खलिले सुसंरन्धा अतिष्ठत ।

अत्रा वो नृत्यतामिव तीव्रो रणुरजायता ॥

(ऋ० १०।७२।६)

वह क प्रजापति सब देवोंका अधिष्ठाता एक महान देव है—

यो देवेष्वधि देव एक आसीत् ।

कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ (ऋ० १०।१२।१५)

वही ' दक्ष ' और ' यज्ञ ' नामक तत्त्वको जन्म देने-वाला है। दक्ष ही यज्ञपति है। जिस शक्तिसे यज्ञकी प्रवृत्ति होती है। उस तत्त्वकी संज्ञा दक्ष है। वह दक्ष ऋद्धि संज्ञक देवमाताका पुत्र है। वह भी प्रजापति है। अर्थात् क प्रजापतिका जो रूप यज्ञमें जाता है उसकी संज्ञा दक्ष है। किन्तु दक्षके लिए आवश्यक है कि वह महान देव प्रजापतिकी उपासना करे। यदि दक्ष और महादेवमें विशेष होता है तो दक्षका यज्ञ संकुशल नहीं रह सकता। प्रत्येक यज्ञमें देवोंके अधिदेव क प्रजापतिकी सत्ता और आराधना अनिवार्य और आवश्यक है। उसी परमेष्ठी प्रजापतिकी लिए ' कस्मै देवाय हविषा विधेम ' का गान है।

परमेश्वरमें अनन्य आस्था

मूल लेखक- श्री भानुशंकर जोषी

जनु.- श्री हंसम् रोय

★

संसारके महान् सज्जक-चित्तक टोलसटोय और महान् रशियन साहित्यकार मैक्सीम गोर्कीके बीच एक सुन्दर-मंगल वार्तालाप है। और वह भी गोर्कीकी नोंधबहीसे, उनके प्रेरक-उद्बोधक शब्दोंमें यहाँ प्रेषित किया है।

" और एक दिन, जिस प्रश्नसे मैं सदैव डरता रहता था, वही यकायक मुझे टोलसटोयेने पूछा, ' गोर्की, आप परमेश्वरका अस्तित्वमें यकीन क्यों नहीं रखते ? '

' यकीन कैसे रखूँ ? मेरा दिल ही नहीं मानता, लियो निकोलाईविच ! '

और उन्होंने मेरे सामने टिकटिकी लगाकर कहा, ' बिल्कुल गलत ! आप आस्तिकके सिवा अन्य कुछ भी हो सकते ही नहीं। आपकी प्रकृति ही ऐसी है। परमेश्वरके बगैर प्राण नहीं जाते, आपकी प्रवृत्तिमें। नास्तिक बननेका तो सिर्फ दुराग्रह है आपका। आप इच्छते हैं कि यह संसारका नक्सा आपके ख्यालके मुताबिक हो। लेकिन ऐसा कैसे बन सके ? यह दुनियामें सिर्फ आपकी ही इच्छा नहीं है, दूसरों भी बहुतसे हैं। मैं आपको इतने तक पहचान सका हूँ कि आप एक ऐसा व्यक्ति है, जो यह संसारकी कई

चीजोंसे प्रेम करते हैं। और प्रेमका दूसरा नाम ही श्रद्धा है, आस्तिकता है। प्रेम संकुचित है, मगर आस्तिकता विशाल है। आप अपने प्रेममें थोड़ीसी स्थिरता प्राप्त कीजिये और प्रेम स्वयम् आस्तिकतामें पलट जायेगा। प्रेमका सर्व श्रेष्ठ स्वरूप ही आस्था है। जो लोक भगवान्में श्रद्धा व यकीन नहीं रखते वे कभी किसीको प्रेम नहीं कर सकते। उनको प्रेममें स्थिरताका ज्ञानन्द ही नहीं पैदा हो सकता। स्थिरता या एकाग्रता ही प्रेमका ज्ञानन्द है। मैं जानता हूँ कि आप सौंदर्यके उपासक हैं, लेकिन सौंदर्य क्या है ? परमेश्वर ही संपूर्ण सौंदर्य है। अच्छा गोर्की ! आप इसका क्या उत्तर देते हैं ? '

किसी परम मोहित करनेवाली वाचासे वह ' जादूगर ' मुझे पूछने लगा।

' मैं क्या जवाब दूँ ? मौन-मुख बनकर इन्होंके प्रदीप्त नयनोंमें, टिकटिका रहा था, तब आंतरमन कह रहा था, ' यह व्यक्ति मानव नहीं। मानो परमेश्वर है, ' ऐसा लग रहा था। "

● ● ●

स्वाध्याय-मण्डल, पारडी [जि. सूरत] द्वारा संचालित
अखिल भारतीय संस्कृत भाषा परीक्षा समिति

अवश्य जीतिये]

[अवश्य जीतिये

परीक्षार्थियोंके लिए स्वर्णविसर

★

हमारी परीक्षाओंके सब केन्द्रव्यवस्थापकों व परीक्षार्थियोंको सूचित करते हुए हमें प्रसन्नता होती है कि परीक्षार्थियोंके उत्साहवर्धनार्थ प्रत्येक परीक्षामें सर्व प्रथम आनेवाले छात्रोंको कुछ विशेष पुरस्कार देनेकी योजना हमने बताई है, वह निम्न प्रकार है—

प्रथमा	रजत मण्डित पदक	मूल्य १०)
प्रारंभिणी	” ” ”	” १०)
प्रवेशिका	” ” ”	” १५)
परिचय	” ” ”	” १५)
विशारद	स्वर्ण मण्डित रजत पदक	” २०)

साहित्य परीक्षायें

साहित्यप्रवीण	स्वर्ण मण्डित पदक	” १५)
साहित्यरत्न	(गोल्ड प्लेटेड)	” २०)
साहित्याचार्य	”	” २५)

इंग्लिश परीक्षायें

अंग्रेजी I	रजत मण्डित पदक	” १०)
अंग्रेजी II	” ” ”	” १०)
अंग्रेजी III	” ” ”	” १५)

स्वाध्यायान्मा प्रमद

(लेखक— श्री दुर्गाशंकर त्रिवेदी, बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय, पीपलखेडा, जि. धार म. प्र.)

“ मैं नरकमें भी उत्तम पुस्तकोंका स्वागत करूंगा, क्योंकि ये जहां भी होंगी, वहां जाए ही स्वर्ग बन जायगा।

—तिलक

महर्षि तिलकका यह चिरंतन सत्य संदेश हमारा ध्यान उक्त वेदादेशकी ओर बरबस मोड़ देता है। ज्ञानार्जनके प्रशस्त पथ पर बढ़नेके लिये उनका यह जम्मत संदेश हमें मार्ग दीप (Lamp-post) की तरह ही पथ बताता है। हमारा समस्त ज्ञान पुस्तकोंमें संचित है। जयसे लेखन कलाका जाविष्कार हुआ, मनुष्यने ज्ञानको लिपिवद्ध करके संचित कर दिया है। इस प्रकार जब हम किसी ग्रंथका अध्ययन करते हों, तो दूसरे अर्थमें एक विकसित मस्तिष्कके जीवन संबंधी महान् ज्ञानके अनुभवोंको ग्रहण करते हैं।

हम अपने जीवनमें ज्ञानार्जन दो प्रकारसे कर सकते हैं—

(१) स्वानुभव द्वारा (२) स्वाध्याय द्वारा।

स्वानुभव द्वारा ज्ञान प्राप्तिका मार्ग बड़ा लम्बा और कांटों भरा है। हम सांसारिक कार्य करते हैं, पग पग पर गलती करते हैं, परिणाम स्वरूप दण्ड पाते हैं। सांसारिक क्रममें हमें मिथ्याचार झूठ, कपट, स्वार्थ, धोखादेही आदिका अनुभव होता है। यहां उसके पथ भ्रष्ट होनेका, फिसलकर गिर पड़नेका डर रहता है। यहां वह कुछ खोकर पाता है। ठगाकर ठाकुर बनता है। इस प्रकार जीवनके खट्टे मीठे चरपरे अनुभवोंकी शालामें उसका शिक्षण जा-जीवन चलता रहता है।

स्वाध्यायका मार्ग सीखनेका दूसरा और सरल मार्ग है। है तो केवल इस मार्ग पर इदतापूर्वक चलते रहनेकी आवश्यकता। स्वाध्यायसे तारपथ है, श्रेष्ठ ग्रंथोंका अध्ययन, मनन, चिन्तन, सद्गुरुओंका सहवास, अपनी आन्तरिक गलतियोंका बोधन, प्रकृति, मनुष्य, रीतिरिवाजोंका स्वाध्याय इन सबके माध्यमसे मनुष्य अपना ज्ञानार्जन पर्याप्त मात्रामें कर सकता है। यह मार्ग सरल है।

सत्साहित्यका अध्ययन मनुष्यके लिये उतना ही आवश्यक है जितना की एक मनुष्यको स्वस्थ रहनेके लिये संतुलित आहार, तभी तो भगवान् कृष्णने गीतामें उसे वाणीका तप घोषित कर उसकी महती महत्तासे काभान्वित होते रहनेका एक गुप्त निर्देश दिया है—

‘ स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ।’

(स्वाध्याय करना वाणीका तप है)

(गीता १७/१५)

हर मानवको अपने धर्मका पालन करना होता है। एक विशिष्ट बन्धनमें या विशेष परिस्थितिमें अपने आपको ढालना पड़ता है। इसलिये हमें स्वाध्याय इस क्षेत्रमें काफी सहायता दे सकता है। तभी तो धर्मके त्रिस्कन्धोंमें ‘ स्वाध्याय ’ का भी महत्वपूर्ण स्थान है।

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति ।

(छान्दोग्य. २।२३।१)

(धर्मके तीन स्कन्ध हैं, यज्ञ, स्वाध्याय और दान ।)

इस प्रकार भारतीय और पाश्चात्य मनीषियोंने एक स्वरसे स्वाध्यायकी महत्ताकी स्वीकारा है, क्योंकि वह मानसिक उन्नतिका सरलतम और सर्वोत्कृष्ट साधन है। जब हम किसी सद्ग्रंथका अध्ययन, मनन, चिन्तन या किसी विद्वान्के विचारोंको मनमें ग्रहण करते हैं तब हमारे मानसिक ज्ञानकी वृद्धि होती है। यह ज्ञानपिपासा शनैःशनैः बढ़ती जानी चाहिये। इस प्रकार ज्ञान प्राप्तिकी आन्तरिक जाकांक्षाको बढ़ाते जाकर, उसे पुष्पित फलित करके मनुष्य अपने ही श्रमसे विद्वान् बनता है। श्रद्धेय पं. सातवलेकर पं. श्रीरामशर्मा आचार्य, डॉ. सी. एस. ‘ कौशिक ’ आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

स्वाध्याय क्या है ?

स्वाध्याय शब्दका दूसरा अभिप्राय स्वयंका अध्ययन करते रहनेसे है। इसीका दूसरा अर्थ यह है कि अपने आप

बिना किसी दूसरेकी सहायताके अध्ययन करते रहना। स्वाध्यायके कई तत्व हैं जिनका जपना अपना महत्व है। (१) विचारः— पुस्तकोंको पढ़ते जाना, भाषणोंको सुनना उनसे प्राप्त विचारोंको अपने अन्तर्मनमें धारण करना, खुद उन विचारोंको समझनेका प्रयत्न करना दूसरेके विचारोंको मनमें धारण करके तदनुकूल अपना जीवन क्रम बनाना ही स्वाध्यायका 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' स्वरूप है। (२) चिन्तनः— पढ़नेसे कुछ भी समस्या हल नहीं हो सकती है, जब तककी हम पढ़ी हुई सामग्री पर चिन्तन न करें। चिन्तनके समय हमें प्राप्त विचारोंको किसी एक पहलू विशेष द्वारा उनका मूल्य आंकना उचित नहीं है। यह भी विचार करना अत्यन्त ही आवश्यक है कि हम उन विचारोंसे कहां तक सहमत हैं, असहमत हैं तो क्यों? आदि बातोंका पूर्णरूपेण विश्लेषण अपने मनमें करते रहना अत्यन्त आवश्यक है।

स्वाध्यायका तीसरा तत्व है, मनन, प्राप्त ज्ञानको पचानेका प्रयत्न करना, उसमें अपनी धारणायें आरोपित कर पचाना। 'मनन' स्वाध्यायिके लिये सबसे आवश्यक तत्व है। श्री 'कौशिक' के मतानुसार जीवनका प्रत्येक क्षण कुछ न कुछ सीखते रहनेके लिये होता है, अतः जीवन ही स्वाध्याय है।

डा. 'महेन्द्र' ने स्वाध्यायका अर्थ स्पष्ट करते हुए एक बड़ी बढिया बात कही है— 'लेखकके मूल तात्पर्यको समझनेकी कला, अर्थात् प्रत्येक विचारको पचानेकी शक्ति ही सच्चा स्वाध्याय है।'

स्वाध्याय कैसे किया जाय।

हमारे एक मित्र कहा करते हैं— 'त्रिवेदीजी, तुम स्वाध्यायकी महत्ता पर बात बातमें लघु भाषण दे डालनेके जादी हो। पर यह तो बहुत बड़ी कठिनाई है। क्या बताऊं, नयी नयी पुस्तकें, नये नये विषय, समझमें नहीं जाते हैं। शब्दोंकी कठिनाई, भाषा, भाव सौंदर्य आदिके अनेक ऐसे स्थल हैं, जो सहज ही समझमें नहीं जा पाते हैं, ऐसे समयमें क्या किया जाय। आई, मैं तो इसे समयका अपव्यय ही मान बैठा हूं, महज इसी एक कारणसे।

ऐसे बांकाशील मनुष्योंके लिये एक ही मार्ग है, दृढ़

निश्चय। तीव्र ज्ञानपिपासा हम जब तक अपने मनमें जागृत नहीं कर लेंगे तब तक हम अपने गन्तव्य पथकी ओर नहीं बढ़ सकेंगे। हम बिना वजह ही परिस्थितियोंका रोना रोया करते हैं। सच तो यह है कि हम केवल प्रमादवश पढ़ना ही नहीं चाहते हैं।

आज तो स्वाध्यायके लिये पर्याप्त मात्रामें मार्ग खुले हैं। प्रत्येक विषय पर आपको कई पत्र पत्रिकायें मिल सकती हैं। श्रेष्ठ ग्रन्थोंके संक्षेप, जल्पमोली संस्करण व श्रेष्ठ ग्रन्थ भी आज सस्ते मूल्यमें सुलभ हैं। हर छोटी बड़ी जगहमें, स्कूलों, कॉलेजोंमें पुस्तकालय, वाचनालयकी व्यवस्था है। कई विद्यालयसनी सज्जनोंसे भी आप पढ़नेकी पुस्तकें ले सकते हैं। आवश्यकता है; आज केवल दिल लगाकर, दृढ़ निश्चय पूर्वक पढ़नेकी और स्वाध्याय करते रहनेके दृढ़ निश्चयकी और उस पर जम कर चलनेकी।

दूसरी बात यह है हम एक सपाटेसे पढ़ जाते हैं। किसी विचारको दृढ़ता प्रदान करनेके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम ध्यानपूर्वक धीरे धीरे उसे पढ़ें। पढ़नेवालोंको सुप्रसिद्ध विद्वान् श्री संतरामजीकी यह बात हृदयगम्य कर लेनी चाहिये।

'मानसिक जीवनमें सफलता प्राप्त करने तथा स्मृतिको पुष्ट करनेके लिये नोटस् लेनेकी आवश्यकता डालिये। व्याख्यानो, नाटकों, भाषणों, पुस्तकों, वार्तालापोंकी अच्छी अच्छी बातें, नवीनतम शैलियां उत्तेजक विचार आदिको यदि हम भली भांति नोट नहीं कर लेते हैं, तो ये हमारे मस्तिष्कसे तुरन्त निकल जाते हैं। यदि हमारा मनोयोग इतना अनिश्चित है कि केवल क्षणस्थायी संस्कार ही बनता है, तो वह अध्ययन निष्फल हो जाता है। विचार बहुत क्षीघ्र नष्ट हो जाने वाली वस्तु है। हमारी स्मृतियां बड़े बड़े छेदोंवाली चलनी की भांति टपकती हैं।'

इसी प्रकार नोटस् लेनेके साथ ही साथ मनन करते रहना भी अत्यन्त ही आवश्यक है। पढ़ी हुई, सुनी हुई या देखी हुई बात पर पुनः पुनः विचार करना, स्मरण और चिन्तन करना, जिससे कि वह मनमें बैठ जाय, जम जाय वह हमारे दिमागमें स्थायित्व प्राप्त कर ले। इसलिये यह आवश्यक है कि पढ़ी हुई बातपर जितना चिन्तन किया

स्वाध्यायान्मा प्रमद

(३३५)

जावेगा, उतनी ही वह बात हमारी स्मृतिमें अच्छी तरहसे बस जायगी, स्थायी बन जायगी ।

एक सज्जनसे अंत हुई, वे काफी पुस्तकें खरीदनेके आदी हैं। पर वे उन्हें आलमारीमें ही सजाये रहते हैं। उनमें पुस्तक संग्रहकी प्रवृत्ति है, वे गर्व करते हैं कि उनके यहां श्रेष्ठ पुस्तकालय है। परन्तु गर्व करनेकी बात तो यह है कि हम खूब पढ़ें, खूब स्वाध्याय करें, मनुष्य समाज और प्रकृति का। यदि हम मोटे ग्रंथोंकी प्रदर्शनी लगा दें तो आभूषणोंकी आंति केवल वे दर्शनीय बन जायेंगी। उनकी सच्ची उपयोगिता तो अध्ययन करते रहनेसे ही संभव है। हम स्वयं पढ़ें, दूसरोंको पढ़नेको दें, पुस्तकके विषयमें चर्चा परिचर्चा करते रहें। स्वाध्यायकी ओर अन्य मनुष्योंको प्रवृत्त करें, यह आजकी सबसे बड़ी आवश्यकता है।

स्वाध्यायमें पूर्ण लाभ पानेके लिये यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि हम योजना बनाकर पढ़ें। हम पढ़ते समय

ज्यों ज्यों ऊंची कक्षाओंकी तैयारी प्रारम्भ करते हैं, त्यों त्यों हमें अधिक पुस्तकें, उच्च विषय सामग्री पढ़ना पड़ती है। इसी प्रकार हमें भी क्रमेण पढ़नेकी योजना बनाकर पढ़ना चाहिये। जिससे कि पढ़नेका पूर्ण लाभ उठाया जा सके। अपनी योजनाओंमें, धर्म, संस्कृति, समाज, चरित्रनिर्माण, लोक व्यवहार आदि सभी विषयोंसे संबंधित सामग्री रखिये। इससे आपकी रुचि बनी रहेगी।

तो आइये बन्धुजों, जब वह समय आ गया है कि हम इस वेदवाणीको हृदयंगम कर संस्कृति, समाज आदिकी उन्नतिके लिये सद्ज्ञान अर्जित करनेके लिये कमर कस के साथ ही यह भी न भूँकें कि बुरी पुस्तकोंका पढ़ना जहर पीनेसे भी अधिक खतरनाक है।

महर्षियोंकी आत्माओं ! यह मत भूलना

स्वाध्यायान्मा प्रमद

(स्वाध्याय करनेमें प्रमाद मत करो ।)

वेदकी पुस्तकें

	मूल्य रु.		मूल्य रु.
ऋग्वेद संहिता	१०)	यजुर्वेद वा. सं. पादसूची	१॥)
यजुर्वेद (वाजसनेयि संहिता)	४)	ऋग्वेद मंत्रसूची	२)
सामवेद	३)	अग्नि देवता मन्त्र संग्रह	६)
अथर्ववेद	६)	इन्द्र देवता मन्त्र संग्रह	७)
(यजुर्वेद) काण्व संहिता	५)	सोम देवता मन्त्र संग्रह	३)
(यजुर्वेद) मैत्रायणी संहिता	१०)	मरुदेवता मन्त्र संग्रह	२)
(यजुर्वेद) काठक संहिता	१०)	दैवत संहिता (तृतीय भाग)	६)
(यजुर्वेद) तैत्तिरीय संहिता, कृष्ण यजुर्वेद	१०)	सामवेद कौथुम शास्त्रीयः ग्रामगेय	
यजुर्वेद-सर्वानुक्रम सूत्र	१॥)	(वेय प्रकृति) गानात्मकः	६)

मूल्य के साथ डा. व्य., राजिस्ट्रेशन एवं पेकींग खर्च संमिलित नहीं है।

मंत्री— स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्याय-मण्डल (पारडी)' पारडी [जि. सूरत]

मूर्तिपूजापर एक दृष्टि

(लेखक— श्री भगवानराव आर्य भोसीकर, B. Sc., आर्यनिवास कन्धार, [नान्देड, महाराष्ट्र])

मूर्तिपूजा कबसे चली इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है। परन्तु इसकी रीतिका सन्दर्भ सहस्रों वर्ष पीछेका दिया जाता है।

पौराणिकोंकी दलील है कि रामेश्वरकी स्थापना स्वयं भगवान् रामचन्द्रजीने की। बासर (व्यासर) C. Rly नामक ग्राममें सरस्वतिकी मूर्ति है। कहा जाता है कि यह मूर्ति स्वयं भगवान् व्यासने रेतोसे तैयार की थी। यदि ये सत्याधारित हैं तो यह कहा जा सकता है कि मूर्तिपूजा पाँच, सात सहस्र वर्ष पीछे हुआ करती थी। आधुनिक विद्वानोंने संशोधनोपरान्त इन दो महापुरुषोंका समय पाँच, सात सहस्र वर्ष पीछेका निश्चित किया है। फिर भी इन संस्थापित मूर्तियोंकी आधुनिकता अथवा प्राचीनताका प्रकाश करना विज्ञानका विषय है। हो सकता है कि इन प्राचीनतम समझी जानेवाली मूर्तियोंकी स्थापनाका सम्बन्ध इन महापुरुषोंसे न हो। अतः इस समय इस सम्बन्धमें विवाद कोई उपयुक्तता नहीं रखता।

महर्षि दयानन्द मूर्तिपूजाका प्रारम्भ जैनियोंसे हुआ यह मानते हैं।

इस विश्वमें अनेक धर्म हैं। वैदिक धर्म, बुद्धधर्म, इस्लाम, ख्रिस्तिधर्म, पारसीधर्म आदि। सबसे प्राचीनधर्म वैदिकधर्म ही है। मानवका आदि ग्रन्थ ऋग्वेद है। वेद प्रतिपादित धारणा ही वैदिकधर्म होनेसे, वैदिकधर्म अति प्राचीन धर्म है।

वेदमें मूर्तिपूजाका विधान नहीं है। मानवके आदिग्रन्थ, धर्म और ईश्वर भावके आदि स्रोत वेदमें, चराचर स्वामी, सच्चिदानन्दधन परमात्माकी कल्पना मूर्तिमें है, ऐसा न कहीं विधान किया है न आदेश दिया है। अतः मूर्तिपूजा अवैदिक है।

बुद्धधर्म भी मूर्तिपूजाके विरुद्ध है। खेदका विषय है कि कुछ प्रमादी बौद्ध भक्तोंने बुद्धकी मूर्ति बनायी और

पूजा प्रारम्भ की। तो भी बुद्धधर्म मूर्तिपूजाकी मान्यता नहीं स्वीकार करता।

इस्लाम तो मूर्तिपूजाका घोर विरोधी है। इसकी स्थापना भी न्यूनाधिक इसीलिये हुई यह माना जा सकता है।

ख्रिस्ति धर्ममें भी प्रोटेस्टेंट सम्प्रदायके अनुयायी मूर्तिपूजाके विरोधी हैं।

पारसी धर्म तो वैदिक धर्मके अधिक निकटका होनेसे मूर्तिपूजाका दोष इसपर लगाया नहीं जा सकता।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि विश्वके समस्त धर्म मूर्तिमें भगवानकी कल्पनाको अथवा मूर्तिही भगवानकी प्रतिमा होनेके विधानको नहीं मानते। अतः यह विधान अतीव शुद्ध रहेगा, यदि यह कहा पाये कि मूर्तिपूजा धर्म विरुद्ध है।

पाठकोंको विदित हो कि मूर्तिपूजा करनेवालोंकी संख्या भी न्यून नहीं। यद्यपि अनेक धर्म इसके घोर विरोधी हैं तथापि इनके अनुयायियोंमें किसी न किसी स्तर पर मूर्तिपूजा अपनी स्थिति रखे हुये है। आश्चर्य है कि जो धर्म मूर्तिपूजाका घोर विरोधी हो उसके अनुयायी पृथक् रूपमें ही क्यों न हो मूर्तिपूजाका अस्तित्व टिकाये रखें। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि मूर्तिपूजा करनेवालोंकी संख्या सच्चे धार्मिकोंकी संख्यासे अधिक ही है पर कम नहीं।

वैदिक कालमें मूर्तिपूजाका अस्तित्व ही नहीं था अतः इसके विरोधाविरोधका प्रश्न ही नहीं उठता। इतना ही आज कहा जा सकता है कि वेदने न मूर्तिपूजाकी आज्ञा ही दी है न ऐसा विधान ही किया है। सनातन अथवा पौराणिक कालमें मूर्तिपूजाका प्रारम्भ हुआ, यह कहा जा सकता है। विश्वके अनेक प्रदेशोंमें हिन्दू देवताओंकी मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ पौराणिक गाथाओंसे सम्बन्ध रखती हैं, और इसका प्रभाव अन्य प्रदेश विदेशों पर भी पड़ा है, जहाँ इस धर्मसे पृथक् धर्म अस्तित्वमें थे।

मूर्तिपूजापर एक दृष्टि

(३३७)

इस प्रकार मानो विश्वभरमें धर्मानुयायी मानव मूर्ति-पूजामें रत था। बौद्धोंकी ओरसे सर्व प्रथम कुछ अंशमें इस पर प्रहार हुआ। कुछ सफलता मिली पर वह भी नहीं के बराबर। इस्लामने इस पर गहरा प्रहार किया। यह आघात अधिक मर्यादा पर्यन्त सफल रहा। मूर्तिमें जगदाधार सर्वव्यापी परमात्माकी कल्पना कपूरवत् नष्ट होने लगी। वैदिक एकेश्वरवादके स्थान पर मूर्तिपूजकोंने जो बहुदेवतावाद चलाया था और पूजा प्रारम्भ की थी उसको नष्ट किया जाने लगा।

इस्लामने मानो वैदिक एकेश्वरवादको पुनर्जीवित किया और जिसका विधान अथवा जिसकी आज्ञा वेदने नहीं दी ऐसी मूर्ति पूजाका घोर विरोध होने लगा। इससे पूर्व और इसके पश्चात् भी इस प्रथाका न्यूनाधिक विरोध हुआ था पर वह स्थायी रूपमें न रह सका। फलस्वरूप यह विरोध सम्प्रदायोंमें परिणत हुआ। सम्प्रदायोंमें क्यों न हो, इस रूपमें आज वह भूतकालका विरोध किसी धार्मिक मानवी क्रांतिका चिन्ह दर्शाता है।

भारतमें भी मूर्तिपूजाके विरोध बहुईश्वरवादकी आलोचना, वादप्रतिवादके उद्योग होने लगे। यद्यपि समाज सुधारकों द्वारा उसको स्थान मिला तथापि विशाल उद्योग महर्षि दयानन्द द्वारा ही हुआ। उन्होंने यह सिद्ध कर दिखाया कि सब सत्य विद्याओंके पुस्तक आदिम ग्रन्थ वेदमें मूर्तिपूजाका न तो कोई विधान ही है और न इसकी आज्ञा ही। मूर्तिपूजा धर्म विरुद्ध है। सर्वव्यापी, जनादि, जनन्त, सर्वाधार परमेश्वरकी कल्पना मूर्तिमें नहीं की जा सकती। न तो मूर्तिको इन तत्त्वोंके प्रतीक रूपमें रखा जा सकता है। इस प्रकारकी कल्पना अथवा प्रतीक रूपमें मानना उस सर्वव्यापीकी खोजसे पराङ्मुख होना है।

किसी लोहके टुकड़ेमें सोनेकी आवना रख प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक उसकी ओर देखने अथवा वैसा उसके साथ बर्ताव करनेसे कोई भी उस लोहको सोना माननेको तयार न होगा। परमात्मा केवल श्रद्धा और भावनाका विषय नहीं, वह इससे पृथक् कुछ है। वह परमात्मा, आत्माका एकमेव साध्य है। वह सच्ची ज्ञान्ति और ज्ञानका जागार है। इसके अस्तित्वका भाव मस्तिष्कमें पैदा होना उसकी ज्ञानेन्द्रियोंके विकसित होनेका द्योतक है।

यह सारा विश्व, प्रकाश और उष्णताका निर्माता सूर्य-कोमलता और स्नेहकी वर्षा करनेवाला चन्द्र, ये तारे रूपमें बिखरे हुये मोती ये जलभरे जलाशय (समुद्र), यह जगत् का अपना सुनियन्त्रित व्यवहार विश्वकी अपनी मर्यादाओंमें गति, सजीवके देहकी मानो कुशल, विद्वान् ज्ञानी शिलरी द्वारा रचित अंग प्रत्यङ्गोंकी सुव्यवस्थित रचना, ऐसी अद्भुत रचनाके शरीरमें चैतन्यकी गति और चञ्चलता.....ऐसे अनेकों विषय क्या कम हैं जिसको देख परमात्माके अस्तित्वका विवेक जागृत नहीं होता। महर्षि दयानन्दने, परमात्माके समक्ष रखे प्रतीक रूप मूर्तिमें जो बड़ी भारी भूल प्रमादी मत्तोंने की थी उसका यथायोग्य, सुसंगत सुधार किया। इस दृष्टिसे महर्षि दयानन्द एक क्रान्तिकारक समझ जा सकते हैं जिन्होंने परमात्माको ज्ञानेन्द्रियोंकी वैषयिक मर्यादासे उत्क्रान्त कर एक सच्चे ज्ञान, दिव्यदृष्टि, आत्माका सच्चिदानन्द विषय होनेका प्रतिपादन किया।

महर्षिदयानन्दने मूर्तिपूजाका घोर विरोध किया। यह विरोध इस्लामकी शैलीसे पृथक् था। महर्षिदयानन्दने विचारोंका विचलन किया। विश्वसक मार्गको अपनानेका कनिष्ठ मार्ग नहीं बताया। सच्चे शिवकी खोजका सच्चा-मार्ग बताया। अपने सत्यशील तर्कपूर्ण विचारोंसे लोगोंको अपनी ओर आकर्षित किया। वेद प्रतिपादित आज्ञाओंके पालनकी सीख दी। एकेश्वरवादका समर्थन और प्रतिपादन किया।

परमात्माकी खोजमें एक दिव्य दृष्टि दी। परमात्मा ज्ञानेन्द्रियोंका ही विषय नहीं अपितु आत्माका विषय है का विधान किया। इसके खोजनेकी पद्धति बतायी। पृष्ठो ख्यमूले प्रश्न, मैं कौन हूँ? कहाँसे आया हूँ? मृत देह क्यों देखता, बोलता सुनता नहीं? जीवित दशामें कौन देखता बोलता, सुनता है? इस चेतनामें ये गुण कहाँसे आये; किसने दिये, कब दिये? पदार्थोंमें आकर्षण, प्रतिसारणकी शक्ति किसने रखी किस सूचक उद्देश्यके प्रत्यर्थ? यह शक्ति कैसे उत्पन्न हुई? अज्ञादिके ग्रहणसे यह शरीर कैसे बढता है, इसके सेलसमें कौनसी शक्ति है? मृत्युके पश्चात् यह और ऐसी अन्य शक्तियाँ कहाँ जाती हैं? ये शक्तियाँ सांघिक रूपमें समीप कैसे जाती हैं? आदि आदि।

इस प्रकार सृष्टि की ओर देखकर जगत्की ओर देखकर परमात्मा की जन्तुत रचना, कलाकृतिले प्राप्त आस्तिक्य बुद्धि उत्पन्न होगी, ज्ञानज्ञानकी जिज्ञासाले स्फुल्लिंग विस्फुरित होने लगेंगे तब इस ज्ञानसे परमात्माके साक्षात्कारमें देर न लगेगी। महर्षि दयानन्दने जो प्रतिपादन किया वह सर्वथैव वेदानुसार था। उपनिषद्को सहारेकी उन्होंने सीख दी। सच्चरित्रसे कपूरवत् जन्तुत्वात् निर्मल मन करनेका मार्ग बताया। संक्षेपमें यह कि उन्होंने अनादि, अनुपम, सर्वाधार सर्वेश्वर, सर्वान्तर्गामी, परमात्माके प्राप्त करनेका, सच्ची ज्ञान्ति प्राप्त करनेका सच्चा वैदिक मार्ग बताया। भारतीय ज्ञानियों, विद्वानों, तत्त्वज्ञों, विचारकोंको पृथक् दिशा दिखायी। परमात्माके प्रतीक रूपमें मूर्तिपूजा पर अश्रद्धा उत्पन्न करनेके आप उच्चस्तरीय पोषक हुये हैं।

मूर्तियोंके दो प्रकार

मूर्तियोंके दो प्रकार प्रायः दृग्गोचर होते हैं। एक उस प्रकारकी मूर्तियाँ जो देवताओंके प्रतीक रूपमें हैं और दूसरे उस प्रकारकी जो महात्मा, सन्त पुरुषों जथवा राष्ट्रनायकोंकी स्मृतिमें स्थापित की जाती हैं। प्रथम प्रकारकी मूर्तियोंका ही जनेक धर्म प्रवर्तकोंने विरोध किया है। क्योंकि देवताओंके प्रतीक रूप इन मूर्तियोंको ही देवता माना जाने लगा और पूजा होने लगी। जहाँ पूजाका भाव 'पूजनीय मानना' 'जादर करना' था वह नष्ट हुआ और आजका विकृत स्वरूप प्राप्त हुआ। इस जतिरेक जथवा प्रमादको दूर करनेका प्रयत्न धर्म प्रवर्तकोंने किया और किसी सीमा पर्यन्त वे सफल भी रहे।

आजके इस विज्ञान युगमें केवल श्रद्धा और विश्वासले काम नहीं चलेगा। वैज्ञानिक विच्छेदण द्वारा सत्यासत्यकी कसौटी पर किसी भी विधानको कसना होगा। मनको निःसंशय करना होगा। तभी उस विधानको मान्यता मिलेगी अन्यथा नहीं। मानव यदि अज्ञानवश किसी सत्यविधानसे दूर जाता भी होगा तो क्या हुआ? उसे सत्यके मार्गपर उसे इसका ज्ञान दे निःसंशय कर लाना विद्वानों पण्डितोंका कर्तव्य है। यदि विद्वानोंने इस दिशामें पग नहीं उठाया तो दोष मानवका नहीं कि वह पथभ्रष्ट हुआ, उन विद्वानों, पण्डितोंका दोष है जिन्होंने सत्य विद्याओंके पढ़ने पढ़ाने, सुनने सुनानेके कर्तव्यको पूरा नहीं किया। यदि आज जनेक

लोग मूर्तिपूजासे पृथक् होते हैं तो यह उनका अज्ञान नहीं अथवा वे नास्तिक नहीं। उन्होंने वैज्ञानिक कसौटी पर उसे कसा है, खूब मनन किया है और सिद्ध किया है कि सर्वव्यापी, सचेतन परमात्माका भाव एकदेशी, अचेतन, प्रतीक रूप एक मूर्तिमें नहीं हो सकता।

और यदि ऐसा अनुभव होता भी हो तो वह अमपूर्ण है। परमात्माकी व्याख्यासे अनभिज्ञताका प्रकटीकरण है। झूठे वैषयिक ज्ञानन्दका जो मूर्तियोंको जनेक मूर्तियोंके साथ सजधज कर दीपकों द्वारा सजित किया जाने से समुद्भूत होता है, लाभ है। सच्चिदानन्दधनके सच्चे ज्ञानन्दका लाभ नहीं। और यदि कोई मूर्तिपूजा करता भी हो तो दोष उसका नहीं जपितु उन विद्वानोंका है जिन्होंने उसे सच्चे ज्ञानके आलोक आत्माका दिग्दर्शन नहीं किया।

देवताओंको प्रतीक रूपमें पूजना, उसे परमात्मा मानना कितना अमपूर्ण है यह ऊपर दर्शाया है। जब यह देखना चाहिये कि राष्ट्रीय नायक, सन्त, महापुरुषोंके स्मृतिरूप मूर्तियोंके पूजनमें क्या हानि है। जहाँ भी पूजनको विकृत स्वरूप प्राप्त हुआ वहाँ हानि है। पूजनियोंको पूज्य समझना समादर करना बुरा नहीं। राष्ट्रीय संस्कृतिकी विधिका अपमान करना घृणास्पद है। मेरी दृष्टिमें राष्ट्रनायक, सन्त, महापुरुषोंको मूर्तियाँ चित्र, स्मृतिरूप संस्थायें जथवा अवन, काव्यादिका होना अपायकारक नहीं। यदि हमने इनकी मूर्तियों चित्रों काव्योंको अपने गृहमें रखा और इनके किये कार्योंकी स्मृति जागृत रखी तो कोई बुरा नहीं। इनके पदचिन्हों पर चलनेकी आत्मप्रेरणा प्राप्त की तो अज्ञानका यह घातक न होगा। इनकी मूर्तियों, चित्रों, काव्योंकी ओर देखकर अनन्य भावसे इनके सच्चरित्रका चिन्तन किया इनके सामयिक उपदेशोंका अध्ययन किया तो हमें सच्चरित्रवान हो सफल जीवन यापनमें अवश्य मदद मिलेगी।

अगवान रामचंद्र, अगवान कृष्ण, अगवान बुद्ध, देव दयानन्द, सन्त ज्ञानेश्वर, महात्मा गांधी, महाराणा प्रताप आर्षोद्धारक शिवाजी आदि राष्ट्रीय नायकों, सन्तों महापुरुषोंकी प्रतिमाओंको सर्वव्यापी परमात्मा न समझते हुए, जथवा जड़ मूर्तिमें चेतनकी कल्पना न करते हुए यदि इनसे सच्चरित्रकी, पुरुषार्थकी आत्म प्रेरणा प्राप्त की

जाये और परमात्मामें अटल विश्वास रखते हुए प्रीतिपूर्वक जीवन मार्ग पर चले तो निश्चय ही ये जतीव, अतुल प्रेरणाके साधन बन जायेंगे। मूर्ति रूपमें, चित्र रूपमें, काव्य रूपमें, संख्या रूपमें, भवन रूपमें निधिरूपमें, उनकी स्मृति जमर रखना हम भारतीयोंका कर्तव्य है। ऐसी निधिको खोना नहीं चाहिये जयवा तिरस्कार भी नहीं करना चाहिये।

हो सकता है कि यही कल्पना मूर्तिके बनानेके पीछे हो। प्रथम बार जो मूर्ति बनी होगी हो सकता है उसके बनानेका उद्देश्य उपरोक्त न्यूनताकी पूर्तिके लिये हो। जनार्ण समाधि पूजा करते थे। यह इसलिये कि स्मृति जागृत रखी जाये। राष्ट्रीय स्तरपर राष्ट्र नायकों, विश्व स्तर पर सन्तों मनीषियों, सामाजिक स्तर पर समाज सुधारकोंकी मूर्तियोंका बनवाना और उनकी स्मृति रखना ऐसी कल्पना होना स्वाभाविक है। और सम्भवतः इसी नैसर्गिक गुणके कारण मूर्ति बनानेका प्रारम्भ हुआ। सन्मार्ग दिग्दर्शकोंकी मूर्ति रूपमें स्मृति रखना जयवा अन्य मार्गों द्वारा उनको स्मृति हो ऐसा करना नैसर्गिक है। उनके प्रति पूज्य भाव सदैव जागृत रहे ऐसा मार्ग निकालना मेरी बुद्धिसे बुरा नहीं। इस स्वाभाविक गुणको कितना ही तोड़े नहीं तोड़ा जा सकेगा। इसीलिये आज हम देखते हैं कि अनेक धर्मोंने मूर्तिपूजाका विरोध किया तो भी मानो जबाबित रूपसे वह अपनी स्थिति रखे हुये हैं। स्वाभाविक गुण तोड़ा नहीं जा सकता, मोड़ा जा सकता है।

किसी भी उत्तम तत्वके व्यवहारमें विकृति जाती है। यह विकृति अतिरेक और दिग्दर्शनाभावके कारण जाती है। महात्मा बुद्धके कालमें यज्ञोंका अतिरेक हुआ था और हिसारूप विकृति जायी ही थी। उस अतिरेक और विकृतिका नष्ट करना परमावश्यक था इसी प्रकार उपरोक्त तत्व जो मूर्तिके पीछे है मूर्तियोंके अतिरेक और पूजन रूप विकृति के कारण विस्मृत हो गया था। उसे अनेक धार्मिक प्रवर्तकोंने प्रकाशमें लानेका प्रयत्न किया। जो भी सफलता जयवा विफलता मिली वह दृष्टिके सामने है।

यह त्रिकालाबाधित सत्य है कि परमात्माकी प्रतिमा कभी नहीं बनायी जा सकती। जो जगदाधार है, सर्व नियन्ता है, जहद्वय है, उसकी मला प्रतिमा कैसे बनायी

सामवेद-भाष्य

सामवेद भाष्यकार श्री स्वामी भगवदाचार्यमें
महाराज।

‘सामसंस्कार भाष्य’ नामसे यह साम-
वेदका उत्तम भाष्य संस्कृतमें तथा हिंदीमें है’

प्रथम भाग मूल्य ८) रु.

द्वितीय भाग मूल्य ८) रु.

डाक व्यय पृथक् है। जति शीघ्र मंगवाइये।

मंत्री— स्वाध्याय मंडल,

पोस्ट— ‘स्वाध्याय मंडल पारडी,

पारडी (जि. सूरत)

जा सकती है। प्रतिमाकी स्थापना स्मृति दिलानेके लिये है। किसी चीजकी विस्मृति न हो इसी लिये तो स्मारकादिकी प्रथा है। जहां हमें जिस चीज ही सदैव स्मृति रखनी हो उसे सर्वव्यापी सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्धामी रूपमें ही स्मरण रखना चाहिये। किसी मूर्ति, चित्रादि की क्या क्षमता हो सकती है जो सदैव स्मरण दिलानेकी प्रेरणा दे सकते हों। ज्ञात्माके विषयको इन्द्रियोंका विषय ही नहीं बनाया जासकता।

सन्तो, महात्माओं, राष्ट्र नायकोंकी स्मृतिरूप मूर्तियोंका पूजन जिस दिनसे प्रारम्भ हुआ होगा सम्भवतः उसीके पश्चात् परमात्माको भी प्रतीक रूपमें लाकर, वैसे न आये तो जवतार रूपमें लाकर पूजना प्रारम्भ किया होगा और इसके अतिरेकके कारण जो विकृति पैदा हुई उसको दूर करनेका धर्म प्रवर्तकोंने प्रयत्न किया। पूज्यको पूजनीय समझना, समादर करना जयोग्य नहीं। पूजनीयकी मूर्तियोंको जयवा वस्तुको पूजनीय समझना यह ठीक नहीं जंचता। उनकी मूर्तियोंको देख, उनके सम्बन्धमें आदरभाव जागृत कर उनके सत्कर्माँकी ज्ञातप्रेरणा प्राप्त करना एक उत्तम तत्व है। अपने जीवनको कपूरवत् अन्तर्बाह्य परिष्कृत सुसंस्कृत करनेके लिये ये उत्तम साधन हैं। कामो-

तेजक चित्रोंके सहवासमें मानव 'वासना युक्त पशु' बन जाता है। पर इन जीवनादर्श दिग्दर्शकोंके 'चित्रोंके सह-वासमें अपने विचार और कर्म द्वारा 'सत्कर्मोत्तेजक' मनुष्य बन जाता है। इतनी ही इसकी महत्ता है।

क्या ही अच्छा हो कि जब कोई व्यक्ति किसी सन्त महाराम, राष्ट्रनायक, समाज सुधारकके चित्र अथवा मूर्ति देख उनके कार्य और व्यवहारकी स्मृतिले उनके प्रति जादरभाव जागृत करे और सत्कार्य प्रवण होनेकी आत्म-प्रेरणा प्राप्त करे। मेरा तो यह निश्चय है कि यदि पावित्र्य का तिरस्कार न किया जाये, विकृति न आने दी जाये तो ये मूर्तियाँ, चित्र, काव्य, संस्थायें, स्मारकादि परम कर्तव्य के स्त्रोत सिद्ध हो सकते हैं जिससे समाजोन्नति होवे और सर्वव्यापी, सर्वोधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, बजर, जमर, जमय, नित्य और सृष्टिकर्ताको आत्माका विषय बना जास्मोन्नति होवे। इसपर भी यह आवश्यक नहीं कि ये उपरोक्त चित्रादि ही साध्यके एक मात्र साधन हैं। इसके सिवा अन्य मार्ग भी हैं, जिसे सन्ध्या जपादि द्वारा साध्य किया जाता है। ये दोनों मनको जन्तुर्बाह्य निर्मल करने-वाले जप्रतिम साधन हैं। ध्यान अथवा जाप द्वारा मनुष्य उस देवताके गुण अपनेमें स्थापित करनेका मानसिक प्रयत्न करता है। परमात्माका ध्यान करनेसे उसके जादिक गुण

निश्चय ही अपनेमें उतर सकते हैं। मन शुद्ध हो सकता है, पाशविकता, जनैतिकता, विकृति आदि हट सकते हैं यदि अतिले प्रेमसे उस प्रकाश स्वरूप (ज्ञान स्वरूप) परमात्माका ध्यान किया जाये। इसका फल यह है कि हम अपने परम कर्तव्य, सत्कर्म सद्ग्यवहार, सदाचारकी ओर प्रवृत्त होते हैं। समाजोन्नति होती है और जास्मज्ञानसे जास्मोन्नति। यह मार्ग सुसंस्कार सम्पन्न व्यक्तिक है। जनसाधारणके लिये ऊपर दर्शाया ही है। नास्तिकता और अधर्म परायणताके निरोधके लिये प्रारम्भिक अवस्थामें वह मार्ग भी तो ठीक है जिसे जनसाधारण शीघ्र अपना सकता है।

यद्भद्रं तन्न आसुव ।

अर्थ है कि कहीं इन सन्त, महारामाजोंकी मूर्तियों, चित्रों, काव्यों, संस्थायों, स्मारकोंके स्मरणका विकृत स्वरूप न बन जाये जैसे पीछे बना है। और सम्भवतः इसी अर्थके कारण महर्षि दयानन्द सरस्वती, वेदोंके प्रकाण्ड पण्डित, वैदिक धर्म प्रवर्तकने अपनी निष्काम, निर्भीक वाणीसे कह दिया 'मेरी मूर्ति न बनायी जाये, मेरी अस्थियों पर समाधि न बान्धी जाये। मृतदेहकी राख किसी खेतमें अथवा जलमें विसर्जित करे।' कितना सूक्ष्म विचार किया था उस पथप्रदर्शक ने !!!

उपनिषद् ग्रंथमाला

१ ईशा उपनिषद्	२)	३७
२ केन उपनिषद्	१.७५	३१
३ कठ उपनिषद्	१.५०	२५
४ प्रश्न उपनिषद्	१.५०	२५
५ मुण्डक उपनिषद्	१.५०	२५
६ माण्डूक्य उपनिषद्	.५०	१२
७ ऐतरेय उपनिषद्	.७५	१९
८ तैत्तिरीय उपनिषद्	१.५०	२५
९ श्वेताश्वतर उपनिषद् (छप रहा है)		

सुबोध संस्कृत व्याकरण

(प्रथम और द्वितीय भाग)

प्रत्येक भागका मू. ५० न. पै. डा. व्य. १२ न. पै.

इस 'सुबोध संस्कृत व्याकरण' द्वारा हम मेट्रिकके छात्रके लिये आवश्यक व्याकरण ज्ञानको पूर्ण बनाना चाहते हैं। हमारी भाषा परीक्षाओंमें सम्मिलित होनेवाले परीक्षार्थी भी इसकी सहायतासे सहज ही मेट्रिक अथवा तत्सम परीक्षाओंको उत्तीर्ण कर सकेंगे, ऐसा विश्वास है।

मंत्री— स्वाध्याय-मण्डल, पो. स्वाध्याय-मण्डल, (पारडी) [जि. सूरत]



चारों वेदोंका सुबोध अनुवाद

वेद एक है

हमारे धर्मका मुख्य ग्रंथ वेद है। यह वेद ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ऐसे चार भागोंमें विभक्त है। इन चारों भागोंका मिलकर वेद एक ही होता है, जतः कहा है—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः।

देवो नारायणोऽनान्यः। महाभारत

‘वेद एक ही है, देव नारायण भी एक ही है, प्रणव भी सर्व वाङ्मयरूप एक ही है।’

एक ही ईश्वर है और धर्मग्रंथ भी एकही वेद है। एक ही ईश्वरके अनेक नाम हैं और इसीतरह एक ही वेदके चार भाग हैं। देखिये—

वेदकास्वरूप

१ पादबद्ध मंत्रोंका संग्रह ऋग्वेद है। इसमें देवताओंका गुणवर्णन है।

२ गद्य मंत्रोंका संग्रह यजुर्वेद है। इसमें यज्ञयागोंका वर्णन है।

३ पादबद्ध मंत्रोंके गायनोंका संग्रह सामवेद है। इसमें उपासना है।

४ मनः शान्ति देनेवाला अथर्ववेद है। अ-थर्वका अर्थ शान्ति है, गतिरहितता है। मनको आध्यात्मिक शान्ति देनेवाला यह वेद है।

इस तरह चारोंवेदोंके मन्त्रसंग्रहका स्वरूप है। ये चार विभाग एक ही वेदराशिके हैं। देवताओंका गुणवर्णन देखकर देवताके विषयमें जादरयुक्त भक्ति उत्पन्न होती है, और उनके गुणोंको अपने अन्दर धारण करके तथा उन गुणोंको अपने अन्दर बढानेका निश्चय उपासकके मनमें होता

है। इस प्रकारके अनुष्ठानसे मनुष्य अपने अन्दर देवत्व स्थापन करने लगता है और यह अनुष्ठान योग्य रीतिसे होने पर वह देव बनता है। मनुष्यका राक्षस न बने, परंतु मनुष्यका देव बने यह वेदका जादेश है।

यद् देवा अकुर्वन्स्तत् करवाणि वा. प. ब्रा.

‘जैसा देवोंने किया वैसा मैं करूंगा’ और मैं देवत्व

प्राप्त करूंगा। यह वैदिक धर्मीय उपासकोंकी इच्छा सदा रहती है। मनुष्योंको देवत्व प्राप्त करनेके मार्गसे वेद के जाता है, कदापि राक्षस बननेके मार्गसे नहीं ले जाता, यह वेदका महत्व पूर्ण उत्तम मार्गदर्शन है।

राक्षस-मनुष्य-देव

‘राक्षस-मनुष्य-देव’ ये मानवोंकी तीन अवस्थाएँ हैं। मनुष्य कुमार्गसे ‘राक्षस’ बनता है और सन्मार्गसे ‘देव’ बनता है। निश्चयसे मनुष्य शीघ्र देव बने, यह शिक्षा वेद देता है।

देवताओंके गुणोंका वर्णन ऋग्वेदमें है, शुभ कर्म करनेका अर्थात् यज्ञ करनेका जादेश यजुर्वेदमें है, शुभगुणोंके मंत्रोंका गायन उपासनाके साधन रूपमें करनेका विषय सामवेदमें है, और मनकी शान्ति अथर्ववेदके मंत्रोंसे मिलती है। इस प्रकार यह वेद मानव मात्रको सच्ची शान्ति का मार्ग योग्य रीतिसे बताता है। मानव मात्र इस वेदके बताये मार्गसे चले, तो उसको सब प्रकारसे उत्तम ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

व्याधिशमनार्थ यज्ञ

ऋतुसंधिषु वै व्याधिर्जायते।

ऋतुसंधिषु ब्रह्माः क्रियन्ते।

वा. प. ब्रा.

‘ऋतुओंकी संधिमें व्याधियाँ होती हैं इसलिये ऋतु-संधियोंमें यज्ञ किये जाते हैं।’ यज्ञ व्याधियोंको दूर करते

हैं और मानवमात्रको आरोग्यका आनन्द देते हैं। ऋतु-परिवर्तनमें व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं इस कारण व्याधियों का शमन करनेवाली औषधियोंके चूर्णका गौंके घी के साथ हवन करनेसे व्याधियाँ दूर होती हैं और आरोग्य सबको प्राप्त होकर आनन्द सबको मिलता है। इस प्रकार यज्ञ सबको आरोग्य देता है। यह आरोग्य एकको मिलता है, और दूसरेको नहीं ऐसा नहीं। वायुके अन्दरके दोष दूर हुए तो शुद्ध वायुका जो सेवन करेगा वह आरोग्य युक्त हो सकता है। इस तरह वेदकी यज्ञविधि सबका हित करनेवाली है।

यज्ञ किसी एक स्थानपर होता है, पर उसका लाभ वायु शुद्ध होनेसे सब लोगोंको होता है। इसी प्रकार वेदका ज्ञान सबको लाभदायक होता है, इस विषयमें मनुस्मृतिने भी कहा है, देखिये—

वेदका ज्ञान

सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।

सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविद्वहति ॥

मनुस्मृति

‘ १ सेनापतिका सेनासंचालनका कार्य, २ राज्य चला-नेका कार्य, ३ न्यायदानका न्यायाधीशका कार्य, तथा ४ सब लोगोंके आधिपत्यके विविध कार्य जो राष्ट्रशासनमें आवश्यक होते हैं, ये सब कार्य, वेदरूपी शास्त्रको जानने-वाला विद्वान् अच्छीतरह कर सकता है । ’

अर्थात् वेदको जाननेवाला शत्रुपर सेना लेकर किस तरह हमला करना चाहिए यह जान सकता है, वेदके इन्द्र-सूक्त और मरुसूक्तोंके अध्ययनसे यह ज्ञान उसको मिल सकता है, राज्य चलानेके विविध कार्य वेदके विश्वेदेवा देवताके सूक्तोंके अध्ययनसे ज्ञात हो सकते हैं। इसी तरहसे अन्यान्य राष्ट्रके चलानेके कार्य करनेका ज्ञान वेदके अनेक सूक्त दे सकते हैं। नारद स्मृतिमें भी कहा है—

पञ्च रूपाणि राजानो धारयन्त्यमितौजसः ।

अग्नेरिन्द्रस्य सोमस्य यमस्य धनदस्य च ॥

नारद स्मृति

‘ महा बलवान् राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और कुबेर इन देवोंके रूप धारण करते हैं। राजा क्रुद्ध होने

पर अग्निका रूप धारण करता है, शत्रुपर आक्रमण करके उसका पराभव करनेके समय वह इन्द्रका रूप धारण करता है, आनन्द प्राप्त होनेपर वह चन्द्रमा जैसा आनन्द कारक बनता है, शत्रुको या दुष्टोंको पकड़कर उसको दण्ड देनेके समय वह यम जैसा बनता है और धनका दाव करने के समय वह कुबेरके समान होता है । ’

देवताओंके वर्णनमें राजाके गुण

इस तरह वैदिक देवताओं द्वारा राजाके ये गुण बताये हैं। संपूर्ण विश्व एक जखंड विराट् राज्य है और उस विराट् राज्यके अग्नि, इन्द्र, चन्द्र, यम, कुबेर इत्यादि देव-ता मंत्री गण ही हैं। वेदका योग्य रीतिसे अध्ययन करने से, वेदके अन्दरकी अनेक देवता विश्वराज्यके मंत्रीगण ही हैं ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है।

विश्वराज्य चलानेवालोंके गुण

ये देवता विश्वमें अपना अपना कार्य यथायोग्य रीतिसे करती रहती है, विश्वराज्यको ये ही चलाती हैं। इस कार्यके करनेमें ये सुस्ती नहीं करती, जालस्य नहीं बताती, रिश्तखोरी नहीं करती, अपना कार्य छोड़ती नहीं हैं, दूसरोंके कार्यमें बाधाएं उत्पन्न नहीं करती। ऐसे अनेक शुभगुण इनमें हैं। ये शुभगुण मनुष्योंको अपनाने योग्य हैं।

राज्य चलानेवालोंमें ये शुभगुण रहने चाहिये। वेदकी देवताओंमें ये शुभगुण हैं। इनका अध्ययन मानवोंको करना चाहिये और अपने अन्दर ये शुभगुण बढ जाय इसलिये यत्न करना चाहिये।

इन्द्र शत्रुओंको दूर करता है, अग्नि अन्धेरेमें मार्ग बताता है, वायु जीवन देता है, सूर्य जीवन दीर्घ करता है, चन्द्रमा औषधियोंका पोषण करता है, पृथिवी सबको आधार देती है। इसी तरह अन्यान्य देवताएं अन्यान्य कार्य कर रही हैं और विश्वराज्य चला रही हैं और प्राणियोंका जीवन आनंदित कर रहीं हैं और सब विश्वभरमें इनका यह कार्य जखंड रीतिसे चल रहा है।

तीन स्थानोंमें वेदका भाव

विश्वका राज्य चलानेवाले अग्नि, इन्द्र, वायु आदि देवताएं हैं। उसके अनुसार राष्ट्रका राज्य चलानेवाले अनेक

चारों वेदोंका सुर्वाध अनुवाद

(३४३)

मंत्री राष्ट्रमें होते हैं । इसीके अनुसार व्यक्तिके शरीरमें एक छोटा राज्य है यह राज्य यहाँकी इन्द्रियाँ चलाती हैं । इस रीतिसे इन तीनों स्थानोंमें वेद मंत्रका अर्थ देखा जाता है ।

इसको समझानेके लिये यहाँ एक तालिका हम देते हैं । वह तालिका ऐसी है—

विश्वमें	राष्ट्रमें	व्यक्तिमें
अग्नि	वक्ता	वाणी
इन्द्र	वीर, शूर	शौर्यवीर्य
चन्द्र	ज्ञान्त आनंदी	मन
वायु	प्राणी	प्राण

इस तरह शरीरमें, राष्ट्रमें और विश्वमें वेदमंत्रका आशय देखनेकी रीति है । इसीको क्रमसे आधि दैविक, आधि भौतिक और आध्यात्मिक भाव दर्शन कहते हैं । तैत्तिरीय देवताएं, जो वेदमें हैं, वे सब आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें इस रीतिसे अपना भाव बताती हैं ।

वेदके अर्थका स्पष्टीकरण इस प्रकार करनेसे तीनों क्षेत्रोंमें वेदमंत्रका अर्थ देखा जा सकता है । अग्निके मंत्र इस प्रकार ज्ञानपरक अर्थ बतायेंगे, इन्द्र देवताके मंत्र शूर-वीरताका भाव बतायेंगे और अन्योन्य देवताएं अन्योन्य भाव बतायेंगी और वेदके अर्थको अपने अपने पद्धतिसे प्रकाशित करेंगी ।

इस प्रकार वेदमंत्रका अर्थ देखनेकी पद्धतियाँ ब्राह्मणों और उपनिषद्ओंमें तथा भाष्यकारोंके भाष्योंमें बतायी हैं । विचार करके इस पद्धतिसे वेद मंत्रोंके अर्थ देखने चाहिये और अर्थ समझानेका यत्न करना चाहिये ।

ये वेदमंत्रोंके अर्थ इस तरह अनेक प्रकारके होते हैं । इससे घबरानेकी कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि ये अर्थ निश्चित नियमोंके अनुसार ही होते हैं और किसी प्रकारकी कोई अनियमितता इनमें नहीं होती है । जो नियमोंके अनुसार होता है उसमें कोई कठिनाता नहीं होती । नियम जाननेसे उसके समझनेमें सुगमता होती है ।

वेदमंत्रोंके अनुवादका प्रकाशन

इस रीतिसे वेदमंत्रोंके अनुवादका स्पष्टीकरणके साथ

प्रकाशन हम, जनताको सुखसे वेदके अर्थका ज्ञान प्राप्त हो, इसलिये कर रहे हैं । नीचे लिखे ग्रंथ तैयार हैं—

१ ब्रह्मविद्या

ब्रह्मज्ञान, परमात्माका सामर्थ्य, ब्रह्मप्राप्तिका मार्ग, पाण्डवी सामर्थ्यका आत्मिक बलसे प्रतिकार, ज्येष्ठ ब्रह्म, गुह्य अध्यात्म विद्या, सूत्रात्मा, एकके अनेक नाम, एक पूजनीय ईश्वर, ईश्वरका नामस्मरण, अपने अन्दरकी शक्ति, प्राणका प्राण, ब्रह्माण्ड देह, जीवन महासागर, अमृतदाता, एक देवकी शक्ति, महान् शासक, जगत्का एक सम्राट्, व्यापक श्रेष्ठ देव, विश्वशक्तका संचालक, सर्व साक्षी, भुवनोंमें श्रेष्ठ, ईश्वरका मित्र, प्रातःकालमें ईश्वरकी प्रार्थना, एक ही उपास्य, सर्वव्यापक ईश्वर, सर्वाधार प्रभुका ध्यान, रक्षक देव, अन्तर्यामी ईश्वर, विश्वभर, आत्मज्योति, जीवात्माका परमात्मामें प्रवेश, मुक्तिका मार्ग, मुक्तिका अधिकारी, विजय प्राप्ति ।

२ मातृभूमि और राज्यशासन

मातृभूमिका वैदिक राष्ट्रगीत, आध्यात्मज्ञान और राष्ट्र-शक्ति, राष्ट्रसभा और उसकी अनुमति, राजाके रक्षक, राजाका कर्तव्य, राजाकी स्थिरता, राष्ट्रके अभ्युदयकी बुद्धि, राजा और राजाके निर्माण करनेवाले, राजाका चुनाव, विजयी राजा, सोलहवाँ भाग रूप कर, दुष्टोंका नाश, शत्रुसेना संमोहन, शत्रुकी घबराहट, विजयकी प्राप्ति, युद्धनीति, विजयकी प्राप्ति, अभ्युदयकी दिशा, बलकी प्राप्ति, स्वशक्ति का विस्तार, बलसंवर्धन, बंधनसे मुक्ति, युद्ध साधन, रथ, कुंडुभी, शूर वीर ।

३ गृहस्थाश्रम

पवित्र गृहस्थाश्रम, कुलवधू, पतिके गुण, वधूपरीक्षा, विवाहका मंगल कार्य, वरकी योग्यता, वैदिक विवाहका स्वरूप, सद्गुणवहारसे धन कमाओ, गोरक्षण करो, स्त्री सूत काते, पाणिग्रहण, चोरीका जन्म न खा, विवाहका समय, बड़ोंका संमान, बादशं पति और पत्नी, स्त्रीपुरुषका परस्पर प्रेम, दोनों एक विचारसे रहें, पत्नी पतिके लिये वस्त्र बनावे, सौभाग्य संवर्धन, स्त्रीके पातिव्रत्यका रक्षण, काम, कामाशिका शमन, वीर पुत्रकी उत्पत्ति, गर्भधारणा, रोगजन्तु नाश, पुंसवन, देवोंका गर्भमें प्रवेश, रक्तस्राव बंद करना,

(३४४)

वैदिक धर्म : सितम्बर १९६१

संतानका सुख, घरमें बालक, प्रजाका पोषण, रमणीय घर, गौ, धन, जल और बल। सौ को जल देनेवाली गाय, संगठन, वज्र, क्रूररहित होकर रहना, भाग्य प्राप्त करना, दुष्ट स्वप्न हटाना।

४ आरोग्य और दीर्घायुष्य

प्राणका संरक्षण, प्राणविद्या, दीर्घायु प्राप्ति का उपाय, स्वाबलंबिनी प्रजा, वाणी, सुख, शापका दुष्परिणाम, ईर्ष्या निवारण, जमर शक्तिकी प्राप्ति, ज्ञान और कर्म, बलदायी अन्न, कल्याणकी प्राप्ति, निर्भय जीवन, आत्मरक्षण, कष्टोंको दूर करना, द्रोह न करना, सत्यको विजय, समृद्धि, वर्षः प्राप्ति, दुष्टोंका दमन, चोर और डाकुओंको दूर करना, रोगनिवारण, यक्ष्मनाश, विषनाश, ज्वरनाश, कुष्ठनाश, गण्डमाला दूर करना, रोगकृमि नाश, संधिवात दूर करना, क्षेत्रीय रोग दूर करना; कुंशोंको दूर करना, हस्तस्पर्शसे रोगनिवारण।

५ मेधाजनन, संगठन और विजय

मेधाजनन, तपसे मेधावृद्धिकी प्राप्ति, मनका बल बढ़ाना, बंधनसे मुक्ति, परस्परकी मित्रता बढ़ाना, ब्राह्मण धर्मका जादेश, हृदयरोग और कामिला रोगको हटाना, वनस्पति पृथिवणी, क्षपामार्ग, पिप्पली, रोहिणी, कुष्ठ औषधी, काक्षा, शमी, सूर्यकिरण चिकित्सा मणिबंधन, जंगिड,

शंख, प्रतिसर मणि, शरीरकी रचना, अञ्जन, पाशोंसे मुक्तता, ब्रह्मचर्य, स्वर्ग और जोदन, हृदयके दो गीघ, तृष्णाका विष, सुरक्षा, समृद्धि, गाढ निद्रा, प्रथम वस्त्र परिधान, ईर्ष्या निवारण, क्षत्रिय, युद्धकी रीति, विजय, दुष्टनाश, मधुविद्या, संगठन, मातृभूमि, मातृभूमिके भक्तोंका सहायक ईश्वर, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रपोषण, बाह्य शक्तियोंसे अन्तःशक्तियोंका मेल, कृषिसे सुख, गौ, जल, वृष्टि, जल, जलचिकित्सा, वाणिज्यसे धनप्राप्ति।

ये पुस्तकें हिंदी-गुजराती-मराठी ऐसी ३ भाषाओंमें पृथक् पृथक् हैं इस प्रत्येक पुस्तकमें ८ सौ से हजार मंत्रोंका अर्थ भावार्थ और स्पष्टीकरण मुद्रित हुआ है। केवल हिंदी, मराठी और गुजराती जाननेवाला भी इनको अच्छी तरह समझ सकता है।

ग्राहक बन जाइये

जाप इसके ग्राहक बन जाइये। इससे वेदके जगले पुस्तक छापनेमें आर्थिक सहायता हमें मिल जायगी और वे पुस्तक जल्दी छप सकेंगे। जागे इसी तरहके बीस पुस्तक छपने हैं। जैसे ये विकते जायंगे वैसे उस धनसे जगले पुस्तक मुद्रित होते जायंगे। इसलिये जाप इन ग्रंथोंको शीघ्र खरीदिये और हमें सहायता पहुंचाइये। बड़ी कृपा होगी

मंत्री— स्वाध्याय मंडल
पारडी जि. सूरत

चिरप्रतीक्षित पुस्तक]

[छप गई]

गीता— पुरुषार्थबोधिनी (हिन्दी)

चिरप्रतीक्षित ग्रंथ 'पुरुषार्थबोधिनी' छपकर तैयार हो गई है। इस पुस्तकके कई पाठकोंके पत्र प्राप्त हुए इसलिये शीघ्र छापनी पड़ी। जाप भी शीघ्रसे शीघ्र आर्डर दीजिए। मूल्य डाक व्यय सहित १५) रु.

विस्तृत सूचीपत्रके लिए लिखें—

मंत्री— स्वाध्याय मण्डल, पो. 'स्वाध्याय मण्डल, पारडी', पारडी (जि. सूरत)

(एक विचार पूर्ण लेख)

वेद और वेदान्त

(लेखक- श्री अरुणकुमार शर्मा, हरिश्चन्द्र रोड, वाराणसी १ [उ. प्र.])

★

हम सर्व प्रथम ' वेद ' शब्द पर विचार करना चाहते हैं। कोषमें ' वेद ' शब्दके पर्याय मिलते हैं— ' श्रुति ' और ' श्रुत्याय '। ' श्रुति ' शब्द अन्वर्थक है। श्रुतिका अर्थ है श्रवण करना, मनन करना। प्राचीन कालमें वेदोंका अध्यापन और अध्ययन केवल ' श्रुति ' के आधारपर होता था। इसी ' श्रुति ' के आधारपर ऋचाओंका निर्माण हुआ। चार-पाँच ऋचाओंका एक वर्ग और कई वर्गोंका एक ' अनुवाक ' होता है। और इसी प्रकार कई अनुवाक मिलकर अध्याय बनाते हैं।

आठ अध्यायोंका एक जटक बनकर सम्पूर्ण ऋग्वेद आठ जटकोंमें विभक्त है।

ऋक् ' संहिता ' में दो प्रकारके विभाग किये गये हैं एक मण्डलात्मक है— जिसमें मण्डल, सूक्त और ऋचाएं विद्यमान हैं। ऋग्वेदमें १० मण्डल हैं १०१७ सूक्त, खिल सूक्तोंके साथ १०२८ और प्रत्येक सूक्तमें एकसे १ लेकर कहीं-कहीं ७०-८०-१०० तक ऋचाएं हैं। ऋचाओंकी औसत संख्या १५-१६ जा सकती है।

इस प्रकार ये मंत्र सूक्तोंके रूपोंमें एकत्रित होनेके बाद पठन-पाठन प्रणालीमें सरलता रखनेके लिए ४-या ५ ऋचाओंको लेकर वर्ग बनाए। और एक अध्यायमें जितने वर्ग होते हैं— उनको समान संख्यामें विभक्त कर उनके अनुवाक बनाए गये। अनुवाकोंके अध्याय और अध्यायोंके जटक। यह विभाग सरणि जबसे प्रसृत हुई तभीसे वेदकी ' श्रुत्याय ' कहने लगे। श्रुतिका भी जन्म पर ऋषियोंका ज्ञान जपर ऋषियोंको उपदेश द्वारा दिया जाने लगा। क्योंकि यास्क महर्षि कहते हैं—

साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। तेऽवरे-
भ्योऽसाक्षात्कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान्
सम्प्रादुः। उपदेशाय ग्लायन्तोऽवरे विस्मर-

ग्रहणायेमं ग्रन्थं समास्नासिषुः वेदं वेदां-
गानिच। (नि० १।२०)

आद्य ऋषियोंने धर्मका साक्षात्कार किया और उन्हें मंत्रोंके रूपमें प्रकट किया—वही ' वेद ' कहलाया। उसके बादके ऋषियोंको अब यह साक्षात्कार होना बन्द हो गया तबसे साक्षात्कृत धर्मका उपदेश करना प्रारम्भ हुआ। और जबसे उपदेशको सुनकर ग्रहण करना प्रारम्भ हुआ तभीसे इसका नाम ' श्रुति ' पडा होगा। पुनः इसके बादके ऋषिगण उपदेशसे ग्रहण करनेमें असमर्थ थे— इसीसे उनके अभ्यासके लिये चारों वेद, संहिता, पद, क्रम, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, शिक्षा, कला, व्याकरण, निरुक्त, छन्दस् और ज्योतिष आदि ग्रन्थोंका निर्माण हुआ। इनका अभ्यास ही ' श्रुत्याय ' पदसे बोधित होने लगा और यास्काचार्य अपने निरुक्तके आरम्भमें वैदिक निघण्टुके लिये कहते हैं— ' सामास्नायः समास्नातः ' अर्थात् श्रुत्याय जो उत्तम प्रकारका माना गया है वह तो वैदिकोंके लिये पठन-पाठनार्थ है। यहां पर निघण्टुकी, जिस पर यास्क टीका लिख रहे हैं, ' सामास्नाय ' कहा है। इसी प्रकार ' निगम ' और ' जागम ' ये पद भी अत्यन्त प्राचीन हैं। ' निगम ' पदसे ' वेद ' का बोध होता है। और ' जागम ' पदसे शास्त्रका। ' निगम ' पदका प्रयोग यास्काचार्यने स्वयं किया है— ' नितरां गमयति ' यानि जो स्पष्ट, सुन्दर ज्ञान कराता है वह— ' निगम '। और उस ' निगम ' के विषयमें चारों तरफसे (आ-समन्तात्) जो ज्ञान कराता है—वह है— ' जागम '। मंत्रोंका ' वेद ' कहनेका कारण केवल इतना ही था कि वे ज्ञानरूप अथवा ज्ञानमय थे, जैसे मनु कहते हैं— ' सर्वज्ञानमयो हि सः ' किन्तु वेद शब्दकी व्युत्पत्ति ध्यानमें रखी जाय तो और भी बार्ते प्रकट होंगी।

(३४६)

वैदिक धर्म : खितम्बर १९६२

‘य एवं वेद’ (जो इस) प्रकार जानता है—‘जानता’ है। इस अर्थमें यह शब्द मन्त्रोंमें वारम्बार जानेसे ‘ज्ञान’ शब्दके अर्थमें रूढ हुये। (ज्ञान शब्दसे केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही नहीं लेना चाहिए—किन्तु धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंको भी लेना चाहिए) ‘विद्’ धातुका अर्थ जो ज्ञान है उसे प्रयोजकके रूपमें भी प्रयुक्त कर सकते हैं—

इष्टप्राप्त्यानिष्टपरिहार यो लौकिकपायं यो
अन्यो वेदयति स वेदः ।

ज्ञान शून्य क्रिया, और क्रिया शून्य कर्म निरर्थक माना जाता है। गीताके द्वारा कृष्णने ज्ञान देकर अर्जुनको कर्म-नुष्ठान बनाया। उपनिषद्का कथन है कि—

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्या मुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ॥

प्रत्यक्ष अथवा अनुमान-प्रमाण द्वारा जिस उपायका बोध नहीं हो सकता उसका ज्ञान वेद अर्थात् शब्द प्रमाण-से होता है—यही वेदका ‘वेदत्व’ है। ‘विद्’ धातुके अनेक अर्थ हैं—वे सब इस ‘वेद’ शब्दमें चारितार्थ हैं। जैसे व्याकरणकी कारिका है—

सच्चायां विद्यते ज्ञाने वेत्ति विन्ते विचारणे ।
विन्दते विदन्ति प्राप्ता इयन् लुक्शनं शेष्विदं
क्रमात् ॥

विन्ते विचारणे—वेदमें जो सीमांसा-वह वेदका विचार ही है। वेदाभ्यास ५ प्रकारका माना गया है—

वेदस्वीकरणं पूर्वं विचारोऽभ्यसनं जपः ।

तद्दानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥

वेद शब्द जिस ज्ञानका वाचक है वह केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही नहीं—बल्कि आधिदैविक, आधिभौतिक आदि सब प्रकारके ज्ञान तथा सत्ता, विचार, प्राप्ति, व्याख्यान, ज्ञापन, आदि सभी प्रकारके अर्थ उसके अन्दर अभिप्रेत हैं। वेदके मन्त्रके व्याख्यान रूप जिन्हें हम आज ‘ब्राह्मण’ के नामसे जानते हैं—वे ब्राह्मण ग्रन्थ अवस्था भेदसे तीन प्रकारके हैं—‘यजुषागादि, आरण्यक, और उपनिषद्—

कर्मसे—कर्म—उपासना—और ज्ञान। कर्म, उपासना ज्ञानको परिनिष्ठित करनेके लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस-लिये जागेके जाचार्योंने बतलाया है—मंत्रब्राह्मणयोर्वेद-नामधेयम्’ ।

युगान्तेऽन्तर्हितान् वेदान् सेतिहासान् महर्षयः ।
लेभिर तपसा पूर्वमनुज्ञाताः स्वयम्भुवा ॥

वेद मन्त्रात्मक होनेके अलावा इतिहासयुक्त भी थे ‘इतिहासपुराणं वेदानां पञ्चमं वेदम्’ । ‘वेद’ शब्दका प्रयोग आयुर्वेद, नाद्यवेद आदि सभी ज्ञानोंके लिये प्रयुक्त हुआ है। ऋषियोंका ज्ञान कितना व्यापक था, यह समझनेके लिये हमारे पास कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं है। किन्तु हमारी परम्परा यही बतला रही है कि वेदसे ही सब शास्त्र, आगम, पुराण, इतिहास निकले हैं। वेदके प्रधान दो भाग किये गये हैं—कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड। अथवा एक अपरब्रह्म दूसरा परब्रह्म ।

द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये शब्द ब्रह्म परञ्च यत् ।
शब्द ब्रह्मणि निष्णातः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥

शब्द ब्रह्म ही कर्मकाण्ड है। कर्म शब्दका यहां संकुचित अर्थ नहीं लेना चाहिये। यज्ञ, तप, दान आदि जितने वेदोक्त सत्कर्म हैं—वे सभी यहां उद्दिष्ट हैं। उन्हींके द्वारा पुरुषके चित्तका मल दूर होकर चित्तमें आत्मस्वरूप प्रतिबिम्बित होता है।

यही वेदान्त याने वेदोंका अन्त अथवा निर्णय या निश्चय है—

सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परि समाप्यते ।

(गीता)

ज्ञान कर्मसे कोई भिन्न पदार्थ नहीं है। कर्म ठीक प्रकारसे किये जायँ—तो उनसे कर्म करनेवाले पुरुषकी जो स्थिति प्रज्ञकी स्थिति बनती है वही तो ज्ञान है। जो केवल ग्रन्थोंके पढ़ने और समझनेसे प्राप्त नहीं हो सकता। जबतक वेद और वेदान्तका यह संबंध टूट नहीं किया जायगा—तबतक—आत्मोद्धारका मार्ग निष्कण्टक होना असम्भव है।

१९ सितम्बरको जन्मदिनके शुभावसर पर—

श्री पंडित

श्रीपाद दामोदर सातवलेकर

लेखक— श्री श्रुतिशील शर्मा, एम. ए.

★



‘संयम ही दीर्घजीवन कुंजी है। और संयमका आधार है प्राणायाम। प्राणायामसे मनुष्य अपनी आयु जितनी चाहे करवा कर सकता है। आजका तरुण समाज न तो संयमके महत्वको जानता है न प्राणायामके महत्वको। इसको विपरीत वह इनका उपहास करता है, और परिणाम वही होता है कि आजके तरुण इन दोनोंके जमावमें समयसे पूर्व ही काल कवलित होते जा रहे हैं।’

९६ वर्षीय श्री पं. श्रीपाद दामोदर सातवलेकरजीके ये शब्द प्रायः सभी अतिथि सुनते हैं, और न केवल सुनते ही हैं अपितु उनके जीवनमें भी ये शब्द अक्षरशः उतरे हुए दीखते हैं। ९६ वर्षकी अवस्थामें भी नित्य प्रति सात-आठ घण्टे काम करना कोई साधारण बात नहीं। वे प्रायः कहा करते हैं कि ‘मनुष्यकी वास्तविक आयु ११६ वर्षकी है। छान्दोग्योपनिषद्में ११६ वर्ष तकका कार्यक्रम निश्चित किया हुआ है। उतने वर्ष तक मनुष्यकी वास्तविक आयु है। इसको और भी बढ़ाया जा सकता है। प्राचीनकालमें जब ग्रीक्स भारतमें जाये तो उन्होंने देखा कि १४० वर्ष के व्यक्ति सड़क पर घूम रहे हैं। पर आज यह अवस्था होगई है कि लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होता है कि मैं ९६ वर्षका होते हुए भी कार्य करता हूँ।’

श्री पंडितजीका कार्य इस अवस्थामें भी जबाब गतिसे चल रहा है। उनका सारा समय वेदोंके कार्योंमें ही बीतता है। वे पिछले ५०-६० वर्षोंसे वेदोंके कार्योंमें ही संलग्न हैं और जबतक क्षताधिक ग्रंथ वेदों पर लिख चुके हैं।

श्री पण्डितजी का जन्म १८९७ में ‘सावन्तवाडी’ के

एक समीपस्थ ग्राममें हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा अधिकतर संस्कृतमें ही हुई। इस संस्कृतके अध्ययनने आगेके जीवनमें बड़ी सहायता दी। संस्कृतका थोड़ा अध्ययन करके उनकी इच्छा संस्कृत भाषाकी गहराईमें उतरनेकी हुई और वे अपने इस कार्यमें जुट भी गए। शनैः शनैः उनका प्रवेश संस्कृतमें होने लगा, फिर संस्कृतका पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके वेदोंकी तरफ दृष्टि डाली और पाया कि वेदोंमें अनन्त रत्न हैं। यद्यपि उन्हें ज्ञात था इन रत्नोंको इकट्ठा करना सरल नहीं है, पर फिर भी धैर्यपूर्वक वे कार्यमें जुटे रहे और आज उन्होंने लोगोंको जो कुछ भी दिया है वह अद्वितीय है। उनके द्वारा सम्पादित वेदोंका मुद्रण आज प्रामाणिक माना जाता है। प्रसिद्ध विद्वान् श्री युधिष्ठिरजी मीमांसकने एक बार एक लेखमें लिखा था कि— ‘आज तक यह माना जाता रहा है कि पाश्चात्य विद्वान् मेक्समूलर द्वारा सम्पादित वेद ही सब दृष्टिसे प्रामाणिक हैं, पर श्री पं. सातवलेकर द्वारा सम्पादित वेदोंको देखकर यह मानना पड़ेगा कि ये वेदके संस्करण मेक्समूलरके संस्करणोंसे कहीं अधिक शुद्ध और प्रामाणिक हैं।’

वेदोंके इन शुद्ध संस्करणोंको निकालनेमें श्री पण्डितजी को अत्यधिक श्रम करना पड़ा।

गीता--पुरुषार्थ बोधिनी

यों तो श्री पण्डितजीके जनेकों ग्रंथ हैं, और सभी पुस्तकोंमें उनकी प्रतिभा झलकती है। पर उनकी वास्तविक प्रतिभागाम्भीर्यका पारिचायक ग्रन्थ ‘गीता’ पर लिखी

(३४८)

वैदिक धर्म : सितम्बर १९६१

गई 'पुरुषार्थ बोधिनी' टीका है। वह टीका जबतक हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड, संस्कृत और अंग्रेजी इन छै भाषा-ओंमें अनुवादित हो चुकी है। हिन्दीमें इसके चार संस्करण छप चुके हैं, और अभी चौथा संस्करण भी समाप्त होकर पांचवा संस्करण निकला है। हम पुस्तककी अनेक विशेष-तायें हैं। इसकी विशेषताओंके कारण ही महात्मा गांधी, श्री चिं. द्वा. देशमुख, डॉ. एस. र. धाकृष्णन् आदि विद्वानों ने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की। महात्माजी अपनी प्रार्थना-सभाओंमें इसी पुस्तकका पाठ करते थे। इस ग्रंथकी अनेक विशेषताओंमें कुछ विशेषतायें निम्न हैं—

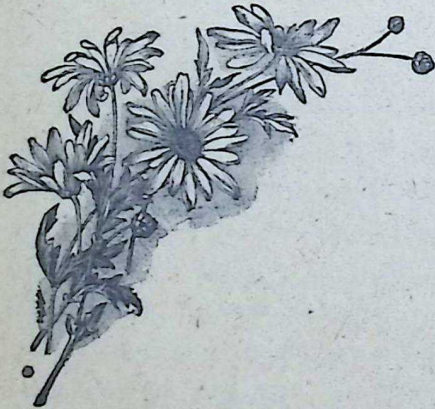
(१) जबतक गीताको एक आध्यात्मिक ग्रंथ माना जाता रहा है। और लोगोंका विचार है कि गीता लोगोंको संसारसे विमुख करके मोक्ष मार्गकी ओर प्रेरित करती है। पर इस ग्रंथमें बताया है कि गीता एक आध्यात्मिक ग्रंथके साथ एक उत्कृष्ट राजनीतिशास्त्र है। यह संसारसे लोगोंको

विमुख न कराके संसारमें नियुक्त करती है। अर्जुन जो संसारसे विमुख हो रहा था, गीताको सुनकर पुनः संसार-के कार्योंमें लग गया।

(२) जब तकके गीताके टीकाकारोंने, यहां तक कि श्री शंकराचार्यजीने भी टीका करते हुए वेदोंका आधार नहीं लिया। वे सब उपनिषदों तक ही आकर रुक गये। यह प्रथम ग्रंथ है, जिसमें वेदोंका आधार लेकर विषयोंका प्रतिपादन किया गया है।

इनके अलावा और भी अनेक विशेषतायें हैं, जिनके कारण यह ग्रंथ बहुत लोकप्रिय हुआ है। श्री पण्डितजी स्वयं भी स्वाभिमानसे कहते हैं कि ' ऐसी टीका गीता पर अभी तक किसीने नहीं लिखी है। ' जो यथार्थतः सत्य भी है।

श्री पण्डितजीके इस पुनीत जन्मदिन पर हम पाठकों व वेदप्रेमियोंकी यही शुभ कामना है कि श्री पण्डितजी ' भूयसी शरदः शताब् ' होकर वेदोंके कार्योंमें व्यस्त रहें।



‘ १४ सितम्बर हिन्दी-दिवस ’ के शुभ अवसरपर
‘ हमारी-प्रतिज्ञा ’

हिन्दी भाषा श्रेष्ठ हमारी ।

देवनागरी हमको प्यारी ॥

ललित भाव सरसानेवाली, सुन्दर ज्योति जगानेवाली ।

हृदय-कमल विकसानेवाली, हिन्दी भाषा श्रेष्ठ हमारी ॥

सूर, जायसी, देव, बिहारी, तुलसी की मोनस फुलवारी ।

शुक्ल, द्विवेदी सिंचित क्यारी, गुप्त, निराला, पंत, पुजारी ॥

हिन्दीभाषा श्रेष्ठ हमारी ।

देवनागरी हमको प्यारी ॥

उठो बन्धुओ उठकर गाओ, हिन्दी भाषाको अपनाओ ।

तार खरमें मिलकर गाओ, जय जय भाषा हिन्दी प्यारी ॥

हिन्दी भाषा श्रेष्ठ हमारी ।

देवनागरी हमको प्यारी ॥

हिन्दीका हम कार्य करेंगे, इसे विश्वभाषा पद देंगे ।

देश में घर घर फैला देंगे, प्रबल प्रतिज्ञा यही हमारी ॥

हिन्दी भाषा श्रेष्ठ हमारी ।

देवनागरी हमको प्यारी ॥

—कृष्णलाल बजाज ‘ प्रदीप ’

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(५७)

होवे, तू (अ-मग्निः अमृतः वा अतिजीवः) अक्षीण
जमर और दीर्घजीवी हो, (अस्रवः ते शरीरं मा
हासिषुः) प्राण तेरे शरीरको न छोड़ें ॥ २६० ॥

जपने बांधवोंसे होनेवाले हमलोंसे जपनी रक्षा करो ।
क्षीण न होओ, मरनेका विचार न करो । दीर्घ जीवन प्राप्त
करनेका संकल्प करो और उसके लिये प्रयत्न करो । ऐसा
करनेसे प्राण जल्दी नहीं छोड़ेंगे और तुम्हें दीर्घ आयु प्राप्त
होगी ।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् ।

२६१ ये मृत्युव एकशतं या नाष्ट्रा अतितायाः ।

मुंचन्तु तस्मात् त्वां देवा

अश्वैश्वानरादधि ॥ अथ. ८।२।२७

(ये एकशतं मृत्यवः) जो एक सौ एक मृत्यु हैं,
(या अतितायाः नाष्ट्राः) जो पार करने योग्य तथा नाश
करनेवाली हैं, (तस्मात्) उससे (देवाः वैश्वानरात्
अश्वैः) सब देव वैश्वानर अग्निकी शक्तिके (त्वां) तुम्हें
(अघिमुंचन्तु) मुक्त करें ॥ २६१ ॥

सैंकड़ों मृत्यु हैं जिनको दूर करना चाहिये । सब मनु-
ष्योंमें रहनेवाला और उनके जीवनोको दीर्घ करनेवाला
अग्नि है, उसको अनुकूल करनेसे मृत्यु दूर होकर दीर्घ आयु
प्राप्त हो सकती है ।

ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप् ।

२६२ पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा

ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।

आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च

रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥

अथर्व. १।४।२२

(पिशङ्गरूपः) चमकीले रूपवाला (वयो-धाः)
जन्मको धारण करनेवाला (विश्वरूपः) अनेक रूपोंवाला
(ऐन्द्रः शुष्मः) इन्द्रका बल (नभसः नः आगन्)
छुलोकसे हमारे पास आया है, वह (आयुः प्रजां च
रायः च) आयु, प्रजा और धन (अस्मभ्यं दधत्)
हमारे लिए धारण करता हुआ (पोषैः न अभि सच-
ताम्) पुष्टियोंसे युक्त होकर हमें प्राप्त हो ॥ २६२ ॥

इन्द्रका तेजस्वी बल मनुष्योंको आयु, प्रजा और धन
देता है । वह पुष्टिके साथ मनुष्योंको प्राप्त हो ।

ब्रह्मा । ओदनः । त्रिष्टुप् ।

२६३ यज्ञं दुहानं सद्मित् प्रपीनं
पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।

प्रजामृतत्वमत दीर्घमायू

रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ अथ. १।१।३४

(यज्ञं दुहानं प्रपीनं सदनं इत्) यज्ञ करनेवाला सदा
समृद्ध (रयीणां सदनं धेनुं) सम्पत्तिका घर ऐसी गौ
है, हम (त्वा पुमांसं) तुझ पुरुषके पास (पोषैः प्रजा
अमृतत्वं उत दीर्घ आयुः) पुष्टियोंसे प्रजाकी पुष्टि और
उनकी दीर्घ आयु (रायः च उप सदेम) और धन लेकर
जाते हैं ॥ २६३ ॥

यज्ञ करनेवाला सदा समृद्ध, सम्पत्तिका घर जैसा होता
है । तुझ यज्ञ कर्ताके पास पुष्टि, प्रजा, जमरत्व, दीर्घायु
और धनके साथ हम जाते हैं । यज्ञ करनेसे पुष्टि होती है,
सुखतान प्राप्त होती है, दीर्घायु होती है और धन भी
मिलता है ।

ब्रह्मा । ब्रह्मचारी । अनुष्टुप् ।

२६४ ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाचन्त ।

इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥

अथर्व. १।१।१९

(ब्रह्मचर्येण तपसा) ब्रह्मचर्य रूपी तपसे (देवाः)
देवोंने (मृत्युं उप अचन्त) मृत्युको दूर किया । (इन्द्रः
ह) इन्द्र भी (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्यके द्वारा (देवेभ्यः
स्वः आभरत्) देवोंके लिए सुख ले आया ॥ २६४ ॥

ब्रह्मचर्य पाठन रूप तपसे देवोंने मृत्युको दूर किया था ।
उस तरह जो ब्रह्मचर्य पाठन करेंगे वे दीर्घायु प्राप्त कर
सकते हैं ।

ब्रह्मा । अध्यात्मं । पंचपदा विराड्गर्भा जगती ।

२६५ दिवस्पृष्टे धावमानं सुपर्णं

अदित्याः पुत्रं नाथकाम उपयासि भीतः ।

स नः सूर्य प्रतिर दीर्घमायुः

मा रिषाम सुमतौ तै स्याम ॥ अथ. १।२।३७

(दिवः पृष्ठे धावमानं सुपर्णं अदित्याः पुत्रं)
छुलोककी पीठपर दौड़नेवाले पक्षीके समान अदितिके पुत्रके

(५८)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

प्राप्त (नाथकामः भूतिः उपयामि) रक्षणकी इच्छा करनेवाला भयभीत हुआ मैं शरणमें जाता हूँ । हे सूर्य ! (स्वः नः दीर्घ आयुः प्रतिर) वह तू हमें दीर्घ आयु प्रदान कर, (ते सुमतौ स्याम, मा रिषाम) तेरी उत्तम बुद्धिसे हम रहें और हमारा नाश न हो ॥ २६५ ॥

जाकाशमें दौड़नेवाले सूर्यकी मैं शरण जाता हूँ, वह हमें दीर्घ आयु देवे । सूर्यकी सुमति हमारे विषयमें रही, तो हमारा नाश कभी नहीं होगा । हम दीर्घायु वनेंगे ।

ब्रह्मा । आदित्यः । व्यवसाना ।

२६६ विषासहिं सहमानं सासहानं सहीयांसम् ।
सहमानं सहोजितं स्वर्जितं
गोजितं संधनाजितम् ।

ईड्यं नाम ह इन्द्रमायुष्मान् भूयासम् ॥

अथ. १७।१।१

(विषासहिं) जलान्त समर्थ (सहमानं) जलान्त बलवान् (सासहानं) नित्य विजयी (सहीयांसं) शत्रुको दबानेवाला (सहमानं) महा बलिष्ठ (सहोजितं) बलसे दिग्विजय करनेवाले (स्वः-जितं) अपने सामर्थ्यसे जीतनेवाले, (गोजितं) भूमि, इन्द्रियों और गौर्णोंको जीतनेवाले, (संधनाजितं) धनको जीतकर प्राप्त करनेवाले (ईड्यं नाम इन्द्रं) प्रशंसनीय यशस्वाले प्रभुकी मैं (हे) प्रशंसा करता हूँ, जिससे मैं (आयुष्मान् भूयासं) दीर्घायुवाला होऊँ ॥ २६६ ॥

इन्द्रके गुण मैं गाता हूँ । वह इन्द्र सामर्थ्यवान्, बलवान्, विजयी, शत्रुको दबानेवाला, सामर्थ्यसे दिग्विजयी, जीतनेवाला, गौर्णोंको जीतकर लानेवाला, धन जीतनेवाला है । इन गुणोंका चिंतन मैं करता हूँ जिससे मैं विजयी और दीर्घायु होता हूँ ।

ब्रह्मा । आदित्यः । जगती ।

२६७ प्रजापतेरावृतो ब्रह्मणा वर्मणाहं
कश्यपस्य ज्योतिषा वर्चसा च ।

जरदृष्टिः कृतवीर्यो विहायाः

सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम् ॥ अथ. १७।१।२७

(अहं प्रजापतेः ब्रह्मणा वर्मणा आवृतः) मैं प्रजापतिके ज्ञान रूप कवचसे आवृत होकर (कश्यपस्य

ज्योतिषा वर्चसा च) और सर्वदर्शक देवके तेज और बलसे युक्त होकर (जरदृष्टिः कृतवीर्यः) वृद्धावस्था तक वीर्यवान् रहता हुआ (विहायाः सहस्रायुः) विविध कर्मोंसे युक्त सहस्रायु-पूर्णायु-होकर (सुकृतः चरेयम्) उत्तम पुण्यकर्म करता हुआ व्यवहार करूँ ॥ २६७ ॥

मैं ज्ञान प्राप्त करके, उस ज्ञानसे अपने कर्तव्य करके, वृद्धावस्था तक जानेवाला पूर्णायु होकर विचरता हूँ ।

ब्रह्मा । विद्येदेवा । वृहतीगर्भा ।

२६८ मा नो मेधां मा नो दीक्षां
मा नो हिंसिष्टं यत्तपः ।

शिवाः नः सन्त्वायुषे शिवा भवन्तु मातरः ॥

अथर्व. १९।४०।३

(नः मेधां मा) मेरी बुद्धिको मत नष्ट करो, (नः दीक्षां मा) मेरी दीक्षाको मत नष्ट करो, (नः यत्तपः) और हमारा जो तप है, उसे (मा हिंसिष्टं) मत समाप्त करो, (मातरः) मातायें-जल धारायें (आयुषे शिवाः सन्तु) हमारी आयुके लिए कल्याणकारिणी होवें, तथा (नः शिवाः भवन्तु) हमारे लिए कल्याण करनेवाली हों ॥ २६८ ॥

मेरी बुद्धि दीक्षा और मेरा तप नष्ट न हो । वह सतत चलता रहे । जीवनकी धाराएं मेरी दीर्घायु करनेवालीं तथा मेरा कल्याण करनेवालीं हों । बुद्धि, दक्षता तथा इन्द्र सहन करनेकी शक्ति इनसे कल्याण होता है और दीर्घ आयु प्राप्त होती है ।

ब्रह्मा । यज्ञः । त्रिष्टुप् ।

२६९ घृतस्य जूतिः समना सदेवा
संवत्सरं हविषा वर्धयन्ती ।

श्रोत्रं चक्षुः प्राणोच्छिन्नो नो अस्तु

अच्छिन्ना वयमायुषो वर्चसः ॥

अथर्व. १९।५८।१

(समना सदेवा) मन लगाकर देवीशक्तियोंके साथ (घृतस्य जूतिः) घी की अविच्छिन्न गति (हविषा संवत्सरं वर्धयन्ती) हविसे संवत्सरको बढ़ाती है, (नः श्रोत्रं, चक्षुः, प्राणः, अच्छिन्नः अस्तु) हमारी कान,

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(५९)

आल और प्राणकी शक्तियां अवच्छिन्न रहें, (आयुषः वर्चसः वयं अच्छिन्नाः) आयु और तेजसे हम अविच्छिन्न हों ॥ २६९ ॥

गौंसे धीसे हम हवन करते रहें, इससे हमारे कान, नेत्र और प्राण बलवान् हों और हम दीर्घ आयुसे संपन्न हों ।

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराट् पथ्यावृद्धी ।

२७० तनूस्तन्वा मे सहे दतः सर्वमायुरशीय ।

स्योनं मे सीद पुरुः पृणस्व पवमानः स्वर्गे ॥

अथर्व. १९।६१।१

(मे तनूः तन्वा) मेरा शरीर मोटा हो (दतः सहे) शत्रुओंका मैं पराभव करूं, सुखे दवानेवालेको मैं अपने सामर्थ्यसे दूर करता हूं, (सर्व आयुः अशीय) मैं पूर्ण आयुको प्राप्त करूं (मे स्योनं सीद) मेरे सुखदायी स्थान पर बैठ, (पुरुः पृणस्व) अपने आपको परिपूर्ण कर, मैं (पवमानः स्वर्गे) पवित्र होता हुआ सुखपूर्ण स्थानमें रहूं ॥ २७० ॥

मेरा शरीर अच्छा हो, शत्रुओंका पराभव मैं करूं, पूर्ण आयु मैं प्राप्त करूं । मैं परिपूर्ण बनूं । पवित्र बनकर मैं सुखपूर्ण स्थानमें रहूं । ये विचार मनमें धारण करनेसे मनुष्य दीर्घायु होता है ।

ब्रह्मा । ब्रह्मणस्पतिः । विराडुपरिष्ठाद्वृद्धी ।

२७१ उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय ।

आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति

यजमानं च वर्धय ॥ अथ. १९।६३।१

हे (ब्रह्मणस्पते) ज्ञानके स्वामिन् । (उत्तिष्ठ) उठो, (देवान् यज्ञेन बोधय) यज्ञसे देवोंको जगाओ, तथा (आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्ति यजमानं च वर्धय) आयु, प्राण, प्रजा पशु और कीर्तिके द्वारा यजमानको बढ़ाओ ॥ २७१ ॥

यज्ञ करनेसे आयु, प्राणशक्ति, सुप्रजा निर्माण करनेकी शक्ति, पशु और कीर्ति प्राप्त होती है ।

ब्रह्मा । अग्निः । अनुष्टुप् ।

२७२ एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्धव ।

आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ॥

अथ. १९।६४।४

हे अग्ने (एता ते समिधः) ये तेरे लिए समिधाये हैं, (त्वं इद्धः) तू प्रदीप्त होकर (समित् भक्ष) तेजस्वी हो, (अस्मासु आयुः धेहि) हमें आयुष्य दे, और (आचार्याय अमृतत्वं) आचार्यके लिए अमरपन दे ॥ २७२ ॥

समिधाओंसे प्रदीप्त हुआ यज्ञाग्नि हमें दीर्घायु करता है और हमारे आचार्यको अमरत्व देता है ।

ब्रह्मा । सूर्यः । प्राजापत्या गायत्री ।

२७३ पश्येम शरदः शतम् । जीवेम शरदः शतम् ।

बुध्येम शरदः शतम् । रोहेम शरदः शतम् ।

पूर्वेम शरदः शतम् । भवेम शरदः शतम् ।

भूयेम शरदः शतम् । भूयसीः शरदः शतात् ।

अथ. १९।६७।१-८

हम (शरदः शतं पश्येम, जीवेम, बुध्येम, रोहेम, पूर्वेम, भवेम, भूयेम) सौ वर्ष तक देखें, जीवें, ज्ञान लें, बढ़ें, पुष्ट हों, अच्छी तरह रहें, सजते रहें । (शरदः शतात् भूयसीः) सौ वर्षसे अधिक भी हम जीवें ॥ २७३ ॥
सौ वर्ष तथा उससे भी अधिक जीवें और पुष्ट होकर हम बलवान् तथा दीर्घायु हों ।

ब्रह्मा । आपः । आधुर्यनुष्टुप् ।

२७४ जीवा स्थ जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम् ।

अथर्व. १९।६९।१

हे जलो ! (जीवाः स्थ) तुम जीवन देनेवाले हो, तुम्हारे कृपासे मैं (जीव्यासं, सर्व आयुः जीव्यासं) जीवूँ और सम्पूर्ण आयु जीवूँ ॥ २७४ ॥

मैं जीवित रहूँगा । सब आयुष्य प्राप्त करूँगा और दीर्घ आयु होऊँगा ।

ब्रह्मा । इन्द्रसूर्यदेवाः । गायत्री ।

२७५ इन्द्र जीव सूर्य जीव

देवा जीवा जीव्यासमहम् ।

सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥ अथर्व. १९।७०।१

हे इन्द्र ! हे सूर्य ! हे देवो ! (जीव, जीव, जीव) जियो, और (अहं) मैं भी (जीव्यासम्) जीऊँ (सर्व आयुः जीव्यासम्) मैं सम्पूर्ण आयु जीऊँ ॥ २७५ ॥
मैं दीर्घ जीवन प्राप्त करूँ और दीर्घायु उपभोगूँ ।

(६०)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

ब्रह्मा । गायत्री । त्र्यम्बसना पंचपदातिजगती ।

२७६ स्तुता मया वरदा वेदमाता
प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं
द्रविणं ब्रह्मवर्चसं ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व. १९।७।१।१

(मया वरदा वेदमाता स्तुता) मैंने वर देनेवाली वेद-
माताकी स्तुति की, वह वेदमाता (प्रचोदयन्तां द्विजानां)
प्रेमणा देनेवाले द्विजोंको (पावमानी) पवित्र करनेवाकी
है, वह (मह्यं) मुझे (आयुः, प्राणं, प्रजां, पशुं, कीर्तिं
द्रविणं, ब्रह्मवर्चसं) जायु, प्राण, प्रजा, पशु, यज्ञ, धन
और ब्रह्मवर्चसको (दत्त्वा) देकर (ब्रह्मलोकं व्रजत)
ब्रह्मलोकको जाओ ॥ २७६ ॥

वेद माताका अध्ययन मैंने किया है वह मुझे दीर्घायु,
प्राणका बल, सुप्रजा, गौ जादि पशु, कीर्ति, धन और ब्रह्म-
ज्ञान देवे ।

वसिष्ठः । उषा । त्रिष्टुप् ।

२७७ उषा अप स्वसुस्तमः
सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ।
अया वाजं देवहितं सनेम
मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ अथर्व. १९।१२।१

(उषा) उषा (सुजातता) उत्तम रीतिसे उत्पन्न
होनेके कारण (वर्तनिं सं वर्तयति) मार्गको सम्यक्
रीतिसे दर्शाती है और (स्वसुः तमः अप) अपनी
बहिन रात्रीके जन्मकारको दूर करती है, (अया देवहितं
वाजं सनेम) इस उषासे हम देवोंके लिए हितकारक बल
प्राप्त करें (सुवीराः शतहिमाः मदेम) उत्तम वीर
सन्तानोंसे युक्त होकर हम सौ वर्ष तक जानन्द प्रसन्न युक्त
रहें ॥ २७७ ॥

उषः कालमें उठनेसे सौ वर्षकी जायु प्राप्त हो सकती
है । उषा दीर्घायु प्राप्त करनेके मार्गको ठीक रीतिसे बताती
है । (अया देवहितं वाजं सनेम) उषः कालमें उठनेसे
इंद्रियोंके लिए हित करनेवाला बल प्राप्त होता है जिससे
सब इंद्रियां अच्छी रहती हैं और दीर्घायु भी प्राप्त हो
सकती है ।

शन्तातिः । पवमानः । गायत्री ।

२७८ पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।

अथो अरिष्टतातये । अथर्व. ६।१९।२

(क्रत्वे, दक्षाय, जीवसे) कर्म, बल और दीर्घ
जायुके लिए (अथो अरिष्टतातये) और कल्याणके
विस्तारके लिए (पवमानः मा पुनातु) पवित्र करने-
वाला देव मुझे पवित्र करे ॥ २७८ ॥

कर्तृत्व शक्ति, बल, दीर्घायु तथा आपत्तिको दूर करनेके
लिये सोमरस सहायक होता है ।

अंगिराः । पृथिव्यमी । पंक्तिः ।

२७९ पृथिवी धेनुस्तस्या अग्निर्वत्सः ।

सा मेऽग्निना वत्सेनेषमूर्जं कामं दुहाम् ।

आयुप्रथमं प्रजां पोषं रयिं स्वाहा ॥

अथर्व. ४।३९।२

(पृथिवी धेनुः) भूमि गाय है, (तस्याः अग्निः
वत्सः) उसका अग्नि बछड़ा है, (सा अग्निना वत्सेन)
वह भूमि अग्निरूपी बछड़ेसे (इषं ऊर्जं कामं दुहां) अन्न
और बल इच्छाके अनुसार देवे, और (प्रथमं आयुः)
उत्तम जायु (प्रजां पोषं रयिं) सन्तान पुष्टि और धन
प्रदान करे, (स्वाहा) मैं आत्मसमर्पण करता हूं । २७९
भूमि धेनु है, उसका पुत्र अग्नि है । इसमें यज्ञ करनेसे
अन्न, बल, दीर्घ जायु, प्रजा, पुष्टि और धन प्राप्त होता है ।
उससे मैं स्वाहा करके यज्ञ करता हूं ।

अंगिराः प्रचेताः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

२८० अग्निः प्रातः सवने पात्वस्मान्

वैश्वानरो विश्वकृद्विश्वशंभूः ।

स नः पावको द्रविणे दधातु

आयुष्मन्तः सहभक्षाः स्याम ॥ अथर्व. ६।४७.१

(वैश्वानरः) सब मनुष्योंको जागे ले चलनेवाला
(विश्वकृत्) सम्पूर्ण जगत्को रचनेवाला, (विश्वशंभूः)
सबका कल्याण करनेवाला (अग्निः) अग्नि (प्रातः सवने
अस्मान् पातु) प्रातः कालके यज्ञमें हमारी रक्षा करे,
(सः पावकः) वह पवित्र करनेवाला अग्नि (नः द्रविणे
दधातु) हमें धनोंमें स्थापित करे, तथा हम (सह-
भक्षाः) एक साथ खानेवाले होकर (आयुष्मन्तः स्याम)
दीर्घायुवाले हों ॥ २८० ॥

सहभक्षाः आयुष्मन्तः स्याम—एक साथ खानेवाले होकर हम दीर्घायुवाले हों। एकतासे बल बढ़ता है, और बलसे दीर्घायु प्राप्त होती है।

अंगिराः प्रचेताः। विश्वेदेवाः। त्रिष्टुप् ।

२८१ विश्वे देवा मरुत इन्द्रो अस्मान्

अस्मिन् द्वितीये सर्वने न जह्युः।

आयुष्मन्तः प्रियमेषां वदन्तो

वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥ अथर्व. १।४७।२

(विश्वेदेवाः मरुतः इन्द्रः अस्मान्) सम्पूर्ण देव, मरुत और इन्द्र हमें (अस्मिन् द्वितीये सर्वने) इस दूसरे सबनमें (न जह्युः) न छोड़ें। (प्रियं वदन्तः आयुष्मन्तः) प्रिय बोलनेवाले तथा दीर्घायुवाले होकर (वयं) हम (एषां देवानां सुमतौ स्याम) इन देवोंकी सुमतिमें रहें जथात् उनका उत्तम जाशीर्वाद हमें मिले ॥ २८१ ॥

हम आपसमें प्रिय माषण करें। देवोंकी अच्छी बुद्धि प्राप्त करें और दीर्घायु प्राप्त करें।

अंगिराः। जंगिडमणिः। अनुष्टुप्।

२८२ कृत्यादूषण एवायमर्थो अरातिदूषणः।

अथो सहस्वान् जंगिडः

प्र ण आयूषि तारिषत् ॥ अथर्व. १।२३।४

(अयं कृत्यादूषणः एव) यह मणि विनाशक शक्ति को दूर करनेवाला (अथ) और (अरातिदूषणः) शत्रुओंको दूर करनेवाला है। (अथ सहस्वान् जंगिडः) और यह सामर्थ्यवान् जंगिडमणि (नः आयूषि प्रतारिषत्) हमारी आयु बढ़ावे ॥ २८२ ॥

जंगिडमणि विनाशक शक्तिको दूर करता है, शत्रुको दूर करता है, सामर्थ्य बढ़ाता है और आयुष्य दीर्घ करता है।

शौनकः (संपत्कामः)। अग्निः। कुकुम्मतौ वृहती।

२८३ मय्यग्रे अग्निं गृह्णामि

सह क्षत्रेण वर्चसा बलेन।

मयि प्रजां मय्यायुर्दधामि स्वाहा मय्यग्निम्।

अथर्व. ७।८२।२

(अग्रे मयि क्षत्रेण वर्चसा बलेन सह अग्निं गृह्णामि) पहिले मैं अपने जन्दर क्षात्रशौर्य, ज्ञानके तेज और बलके साथ रहनेवाले अग्निका ग्रहण करता हूँ, (मयि

प्रजां) अपने जन्दर प्रजाको (मयि आयुः) अपने जन्दर आयुको (मयि अग्निं) अपने जन्दर अग्निको (दधामि) धारण करता हूँ ॥ २८३ ॥

अग्नि मुझे सुसंतान, और दीर्घायु देता है। इसलिये मैं क्षात्रबल, तेज और सामर्थ्य प्राप्त करनेके लिये यज्ञसे अग्निकी उपासना करता हूँ।

शुकः। कृत्यादूषणं। जगतीगर्भा त्रिष्टुप्।

२८४ ऐन्द्राग्रं वर्म बहुलं यदुग्रं

विश्वे देवा नाति विध्यन्ति सर्वे।

तन्मै त्वं त्रायतां सर्वतो

बृहदायुष्मां जरदृष्टिर्यथासानि ॥

अथर्व. ८।५।१९

(सर्वे विश्वे देवाः) सब देव (यत् न अति-विध्यन्ति) जिसका अतिक्रमण नहीं कर सकते, (तत् उग्रं बहुलं ऐन्द्राग्रं बृहत् वर्म) वह बल बड़ा इन्द्र और अग्निका बड़ा कवच (मे तत्त्वं सर्वतः त्रायतां) मेरे शरीरकी सब ओरसे रक्षा करें (यथा) जिससे मैं (जरदृष्टिः) वृद्धावस्था तक कार्य करनेवाला होकर (आयुष्मान् असानि) दीर्घायु होऊँ ॥ २८४ ॥

कवच शरीरका संरक्षण करता है। मैं वृद्धावस्थातक अच्छी तरह जीवित रह कर दीर्घायुषी बनूंगा, ऐसा मनका निश्चय करना चाहिये।

शुकः। इन्द्रः। विराट् त्रिष्टुप्।

२८५ अस्मिन्निन्द्रो नि दधातु नृमणं

इमं देवासो अग्निं संविशध्वम्।

दीर्घायुत्वाय शतशारदाय

आयुष्मान् जरदृष्टिर्यथासत् ॥ अथर्व. ८।५।२१

(अस्मिन् इन्द्रः नृमणं नि दधातु) इसमें इन्द्र बल स्थापित करे, (देवासो इमं अग्निं संविशध्वं) देव इसमें प्रविष्ट हों, (यथा) जिससे (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय) सौ वर्षकी दीर्घायुके लिए (आयुष्मान् जरदृष्टिः असत्) दीर्घ जीवी और वृद्धावस्था तक सुख रहें ॥ २८५ ॥

(६२)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

मानव शरीरमें जंगों और जवववोंमें देवोंके जंश जाकर रहते हैं। वे शरीरको सौ वर्षतक जीवन चलानेकी सहायता करें। वृद्धावस्थामें भी शरीर अच्छा कार्यक्षम रहे।

भरद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् ।

२८६ प्रत्यंचमर्कमनयं शचीभिः

आदित् स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ।

अया वाजं देवहितं सनेम

मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ अथर्व. २०।६३।३

(शचीभिः प्रत्यंचं अर्कं अनयन्) अपनी शक्तियों के साथ वे सूर्यको इधर लाये (आत् इत् इषिरां स्वधां पर्यपश्यन्) इसके पश्चात् प्रिय स्वधाको उन्होंने देखा (अया देवहितं वाजं सनेम) इससे देवोंके रखे हुए बलको उन्होंने प्राप्त किया, हम (सु-वीराः शतहिमाः मदेम) अच्छे पुत्रपौत्रोंके साथ सौ वर्ष आनन्दसे रहें

॥ २८६ ॥

उत्तम वीर पुत्रपौत्रोंके साथ सौ वर्षतक अच्छी तरह आनन्दके साथ रहें ।

शम्भुः । जरिमा, आयुः । जगती ।

२८७ तुभ्यमेव जरिमन्वर्धतामयं मेममन्ये

मृत्यवो हिंसिषुः शतं ये ।

मातेव पुत्रं प्रमना उपस्थे

मित्र एनं मित्रियात्पात्वंहसः ॥

अथर्व. २।२८।१

हे (जरिमन्) वृद्धावस्था ! (तुभ्यं एवं अयं वर्षतां) तेरे लिए ही यह मनुष्य बड़े, (इमं ये अन्ये शतं मृत्यवः) इसको जो ये सौ अपमृत्यु हैं, (मा हिंसिषु) मर हिंसित करें । (प्र-मनाः माता पुत्रं उपस्थे इव) प्रसन्न मनवाली माता पुत्रको जैसे गोदीमें लेती है, उसी प्रकार (मित्रः मित्रियात् एनसः एनं पातु) मित्र मित्र सम्बन्धी पापसे इसको बचावे ॥ २८७ ॥

माता जैसे पुत्रका बचाव करती है, उस तरह वृद्धावस्था मनुष्यके शरीरका संरक्षण करे, इसको दीर्घ आयु तक के जावे और कार्यक्षम रखे ।

शम्भुः । जरिमा, आयुः । त्रिष्टुप् ।

२८८ मित्र एनं वरुणो वा रिशादा
जराभृत्यं कृणुतां संविदानौ ।

तदग्निर्होता वयुनानि विद्वान्

विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति ॥

अथर्व. २।२८।२

(मित्रः रिशादसः वरुणः वा) मित्र और वात्रु-नाशक वरुण (संविदानौ एनं जराभृत्यं कृणुतां) दोनों मिलकर इसको वृद्धावस्थाके पश्चात् मरनेवाला करें । (होता वयुनानि विद्वान्) दाता और सब कर्मोंको यथावत् जाननेवाला अग्नि (तत् विश्वा देवानां जनिमा विवक्ति) उसे सब देवोंके जन्मोंको कहता है ॥ २८८ ॥

मित्र तथा वरुण इस मनुष्यको वृद्ध अवस्थातक सुखसे ले जायें । मित्र तथा वरुण ये दो प्राण अपान हैं । इनकी सुस्थितिसे मनुष्य दीर्घजीवी हो सकता है ।

शम्भुः । जरिमा । त्रिष्टुप् ।

२८९ त्वमीशिषे पशूनां पार्थिवानां

ये जाता उत वा ये जनित्राः ।

मेमं प्राणो हासीन्मो अपानो

मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः ।

अथर्व. २।२८।३

(ये जाताः उत वा ये जनित्राः) जो जन्मे हैं और जो जन्मनेवाले हैं, उन (पार्थिवानां पशूनां त्वं ईशिषे) पृथ्वीके ऊपरके प्राणियोंका तू स्वामी है । (इमं प्राणः मा अपानः च मा हासीत्) इसको प्राण और अपान न छोड़ें, (मित्राः इमं मा वधिषु) मित्र इसे न मारें, (मा अमित्राः) वात्रु भी न मारें ॥ २८९ ॥

वात्रु और मित्र इस मनुष्यको न मारें । प्राण और अपान इस मनुष्यको न छोड़ें अर्थात् दीर्घ कालतक इसके शरीरमें योग्य रीतिसे कार्य करके इसको दीर्घायु बनावें ।

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(६३)

शम्भुः । यावापृथिवी । त्रिष्टुप् ।

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप् ।

२९० चौष्ट्वा पिता पृथिवी माता
जरामृत्युं कृणुतां संविदाने ।
यथा जीवा अदितेरुपस्थे
प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ।

अथर्व. २।२८।४

२९२ यमोदनं प्रथमजा ऋतस्य
प्रजापतिस्तपसा ब्रह्मणेऽपचत् ।
यो लोकानां विधृतिर्नाभिरेषात्
तेनौदनेनार्ति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३।१

(चौः पिता पृथिवी माता संविदाने) चौ पिता
और पृथ्वी माता मिलकर (त्वा जरामृत्युं कृणुतां)
तुझे वृद्धावस्थाके बाद मरनेवाला करे, (यथा अदितेः
उपस्थे) जिससे मातृभूमिकी गोदमें (प्राणापानाभ्यां
गुपितः) प्राण और अपानसे सुरक्षित होकर तू (शतं
हिमाः जीवाः) सौ वर्षतक जीवित रह ॥ २९० ॥

बुलोक और पृथिवी अर्थात् यह संपूर्ण विश्व सहायता
करके इस मनुष्यको दीर्घजीवी बनावे । प्राण और अपानसे
यह मनुष्य संरक्षित होकर सौ वर्षतक जीवित रहे ।

शम्भुः । मित्रावरुणौ । भुरिक् ।

२९१ इममग्र आयुषे वर्चसे नय
प्रियं रेतो वरुण मित्रराजन् ।
मातेवास्मा अदिते शर्म यच्छ
विश्वे देवा जरदष्टिर्यथासत् ॥

अथर्व. २।२८।५

हे (अग्रे मित्र वरुण राजन्) जमे, मित्र और
वरुण राजा । (प्रियं रेतः) प्रिय भोग और वीर्यका बल
देकर (इमं आयुषे वर्चसे नय) इसको दीर्घ आयुष्य
और तेज प्राप्ति के लिए ले चक, हे (अदिते) जादि
शक्ति ! तू (माता इव अस्मै शर्म यच्छ) माताके
समान इसे सुख दे, हे विश्वे देवो ! (यथा जरदष्टिः
असत्) यह मनुष्य जिससे वृद्धावस्था तक जीवित रहे
वैसी सहायता करो ॥ २९१ ॥

वीर्यका संवर्धन करके दीर्घ आयुष्य और तेज प्राप्त
करना चाहिये । माता जैसे पुत्रका पालन करती है । उस
तरह सृष्टि रूपी माता इस मानवको वृद्धावस्था तक ले
जानेमें सहायता करे ।

(ऋतस्य प्रथमजाः प्रजापतिः) ऋत नियमका
पहला प्रवर्तक प्रजापति (ब्रह्मणे यं ओदनं अपचत्)
ब्रह्मके लिए जिस जज्ञको पकाता रहा, (यः लोकानां
विधृतिः) जो लोकोंको विशेषरूपसे धारण करता है,
और (न अभिरेषात्) जो कभी किसीको हानि नहीं
पहुंचाता (तेन ओदनेन मृत्युं अतितराणि) उस
जज्ञसे मैं मृत्युको पार करूं ॥ २९२ ॥

जज्ञसे मानवोंके शरीरोंकी धारणा और पुष्टि होती है ।
अतः यह जज्ञ योग्य रीतिसे पकाना चाहिये । इस योग्य
रीतिसे पकाये जज्ञसे कोई हानि नहीं होती और इसके
खेवनेसे मृत्यु दूर किया जा सकता है ।

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप् ।

२९३ येनातरभूतकृतोऽति मृत्युं
यमन्वविन्दन्तपसा श्रमेण ।
यं पपाच ब्रह्मणे ब्रह्म पूर्वं
तेनौदनेनार्ति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३।२

(येन भूत-कृतः मृत्युं अतितरन्) जिससे भूतोंके
बनानेवाले मृत्युके पार हो गए (यं तपसा श्रमेण अन्व-
विन्दन्) जिसे तप और परिश्रमसे प्राप्त किया (यं
पूर्वं ब्रह्म ब्रह्मणे पपाच) जिसको पहले ब्रह्मने ब्रह्मके
निमित्त पकाया (तेन ओदनेन मृत्युं अति तराणि)
उस जज्ञसे मैं मृत्युको पार करूं ॥ २९३ ॥

(६४)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । भुरिजगती ।

२९४ यो दाधारं पृथिवीं विश्वभोजसं
यो अन्तरिक्षमा पृणाद्रसैन ।
यो अस्तमनादिवमुध्वो महिम्ना
तेनौदनेनार्ति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३।५।३

(यः विश्वभोजसं पृथिवीं दाधार) जो सबको भोजन देनेवाली पृथ्वीको धारण करता है, (यः रसेन अन्तरिक्षं आ पृणात्) जो रससे अन्तरिक्षको भर देता है, (यः महिम्ना ऊर्ध्वः दिवं अस्तमनात्) जो अपनी महिमासे ऊपर ही छुलोकको धारण किए हुए है । (तेन ओदनेन मृत्युं अति तराणि) उस जन्मसे मैं मृत्युको पार करूं ॥ २९४ ॥

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप् ।

२९५ यः प्राणदः प्राणद्वान्बभूव
यस्मै लोकाः घृतवन्तः क्षरन्ति ।
ज्योतिष्मती प्रदिशो यस्य सर्वाः
तेनौदनेनार्ति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३।५।५

(यः प्राणदः प्राण-द-वान् बभूव) जो जीवन देनेवाला, प्राण देनेवालोंका स्वामी है, (यस्मै घृतवन्तः लोकाः क्षरन्ति) जिसके लिए घृतयुक्त लोक रस देते हैं, (यस्य सर्वाः प्रदिशः ज्योतिष्मतीः) जिसकी सब दिशा और उपदिशायें तेजवाली हैं, (तेन ओदनेन मृत्युं अतितराणि) उस जन्मसे मैं मृत्युको पार करूं

॥ २९५ ॥

धी भोजनमें अवश्य होना चाहिये । धी खानेसे तेज-स्त्रिता बढ़ती है और मृत्यु दूर किया जा सकता है ।

प्रजापतिः । अतिमृत्युः । त्रिष्टुप् ।

२९६ यस्मात्पक्वादमृतं सम्भूव
यो गायत्र्या अधिपतिर्वभूव ।
यस्मिन्वेदा निहिता विश्वरूपाः
तेनौदनेनार्ति तराणि मृत्युम् ॥

अथर्व. ४।३।५।६

(यस्मात् पक्वात् अमृतं सं बभूव) जिस परिपक्व से अमृत उत्पन्न हुआ, (यः गायत्र्याः अधिपतिः बभूव) जो गायत्रीका अधिपति हुआ (यस्मिन् विश्वरूपाः वेदाः निहिताः) जिसमें सब प्रकारके वेद निहित हैं, (तेन ओदनेन अति तराणि मृत्युं) उस जन्मसे मैं मृत्युको पार करूं ॥ २९६ ॥

उत्तम परिपक्व जन्मसे अमरपन होनेवाला रस उत्पन्न होता है । जिस जन्ममें सब प्रकारके ज्ञान देनेवाले वेद रहते हैं, उस जन्मसे मृत्युको दूर करूं । जन्म स्मरण शक्ति बढ़ानेवाला होता है । इस जन्मसे अपनी स्मरण शक्ति बढ़ानी चाहिये । और आयु बढ़ानेका उपाय करना चाहिये ।

प्रजापतिः । अस्तृतमणिः । पंचपदा ज्योतिष्मती त्रिष्टुप् ।

२९७ प्रजापतिष्वा वधनात्प्रथमं
अस्तृतं वीर्याय कम् ।
तत्तै वधनाभ्यायुषे वर्चस ओजसे च
बलाय चास्तृतस्त्वाभि रक्षतु ॥

अथर्व. १९।४६।१

(प्रजापतिः) प्रजापतिने इस (प्रथमं कं अस्तृतं) मुख्य और सुख देनेवाले अस्तृत मणिको (वीर्याय) बलके लिए (त्वा वधनात्) तुझे बांधा, (तत् ते आयुषे) उसी मणिको तेरी आयुके लिए (वर्चसे ओजसे) तेजके लिए, सामर्थ्यके लिए (बलाय च) और बलके (वधनाभि) बांधता हूं, (अस्तृतः त्वा अभि रक्षतु) अस्तृत मणि तेरी रक्षा करे ॥ २९७ ॥

अस्तृत मणिको शरीर पर बांधनेसे वीर्य, आयु, ओज और बल अनुस्यका बढ़ता है ।

अस्तृत मणि तैयार करनेकी विद्याकी खोज करनी चाहिये । ' अस्तृत ' का अर्थ ' न थकनेवाला ' है ।

मृगुः । अग्निः । भुरिगावो पंक्तिः ।

२९८ पुनस्त्वादित्या रुद्रा वसवः
पुनर्ब्रह्मा वसुनीतिरग्रे ।
पुनस्त्वा ब्रह्मणस्पतिराधाद्
दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ॥ अथ. १२।२।६

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(६५)

हे जन्मे ! (आदित्याः रुद्राः वसवः) आदित्य, रुद्र और वसु (वसु-नीतिः, ब्रह्मा, ब्रह्मणस्पतिः) धन देनेवाला ब्रह्मा और ब्रह्मणस्पति (शतशारदाय दीर्घायुत्वाय त्वा पुनः अघात्) सौ वर्षकी दीर्घायुके लिए तुझे पुनः स्थापित करते हैं ॥ २९८ ॥

मृगुः । अग्निः । अनुष्टुप् ।

२९९ अस्मिन्वयं संकसुके अग्नौ रिप्राणि मृज्महे ।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः प्रणि

आयूषि तारिषत् ॥ जयर्व. १२।२।१३

(अस्मिन् संकसुके अग्नौ) इस विदाहक जग्नमें (वयं रिप्राणि मृज्महे) हम अपने सब दोषोंको शुद्ध करते हैं, इससे (यज्ञियाः शुद्धाः अभूम) हम पवित्र और शुद्ध होते हैं, वह (नः आयूषि प्र तारिषत्) हमारी आयु बढ़ावे ॥ २९९ ॥

यज्ञ करनेसे सब दोष दूर होते हैं । इस तरहसे प्राप्त हुई पवित्रता आयुको बढ़ाती है ।

मृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०० इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि

मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।

शतं जीवन्तः शरदः पुरुचीस्तिरो

मृत्युं दधतां पर्वतेन ॥ जय. १२।२।२३

(जीवेभ्यः इमं परिधिं दधामि) जीवोंके लिए मैं यह मर्यादा देता हूँ, (एषां अपरः एतं अर्थं मा नु गात्) इनमेंसे कोई एक भी इस जग्यके पार कभी न जावे, (शतं शरदः पुरुचीः जीवन्तः) जति दीर्घ सौ वर्षोंका जीवन अनुभव करते हुए (पर्वतेन मृत्युं तिरो दधतां) पर्वतके द्वारा मृत्युको अन्तर्हित रखें ॥ ३०० ॥

मानवोंकी आयुष्य मर्यादा परमेश्वरने निश्चित की है । कोई मनुष्य नीच बनकर इस आयुरूपी धनको न खो बैठे । सौ वर्षकी दीर्घ आयु प्राप्त करें और पृष्ठवंशरूपी पर्वतके नीचे मृत्युको दबाकर रखें । पृष्ठवंशको सीधा-सरल-रख-लेखे दीर्घ आयु प्राप्त होती है ।

मृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०१ आ रोहितायुर्जरसं वृणाना
अनुपूर्वं यतमाना यति स्थ ।

तान् वस्त्वष्टां सु जनिमा स जोषाः

सर्वमायुर्नयतु जीवनाय ॥ जय. १२।२।२४

(जरसं वृणानाः आयुः आरोहत) वृद्धावस्थाको स्वीकार करते हुए दीर्घ आयुको प्राप्त करो, (अनुपूर्वं यतमानाः यति स्थ) एकके पीछे दूसरा सिद्धि तक प्रयत्न करता रहे, यत्नमें रहे (सुजनिमा सजोषाः त्वष्टा) उत्तम जन्मवाला उत्साहवाला त्वष्टा (तानू चः जीवनाय सर्वं आयुः नयतु) आप सबको दीर्घ जीवन्तके लिए पूर्ण आयुतक ले जावे ॥ ३०१ ॥

आयु वृद्ध होनेतक शरीरको अच्छी तरह सुरक्षित रखो । अनुकूलताके अनुसार प्रयत्न करके दीर्घ आयु प्राप्त करें ।

मृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०२ यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति
यथर्तव ऋतुमिर्यन्ति साकम् ।

यथा न पूर्वमपरो जहाति

एवा धातरायूषि कल्पयैषाम् ॥

जय. १२।२।२५

(यथा अहानि अनुपूर्वं भवन्ति) दिन जिस प्रकार एक के पीछे दूसरे जाते हैं (यथा ऋतवः ऋतुभिः साकं यन्ति) जैसी ऋतु ऋतुओंके पीछे चलती हैं, (यथा पूर्व अपरः न जहाति) जैसे पहिलेको दूसरा नहीं छोड़ता, हे धाता ! (एवा एषां आयूषि कल्पयैषाम्) इसी प्रकार इनकी आयु निश्चित कर ॥ ३०२ ॥

जैसे दिन एकके पीछे दूसरा क्रमसे जाता है, जिस प्रकार एक ऋतु दूसरेके पश्चात् जाता ही है, जिस तरह जादमीके पीछे जादमी जाता रहता है, इस प्रकार पूर्ण आयुष्यके दिन एकके पीछे एक जाते जाय और पूर्ण आयु प्राप्त हो । बीचमें किसी कारण विघ्न उत्पन्न न हो ।

(६६)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

मृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०३ वैश्वदेवीं वर्चस आरभध्वं
शुद्धां भवन्तः शुचयः पावकाः ।
अतिक्रामन्तो दुरिता पदानि
शतं हिमाः सर्ववीरा मदमे ॥ अथ. १२।२।२८

(शुद्धाः शुचयः पावकाः भवन्तः) शुद्ध पवित्र
और मलरहित होकर (वर्चसे वैश्वदेवीं आरभध्वं)
कल्याणके लिए विश्वदेवकी उपासना आरम्भ करो, (दुरिता
पदानि अतिक्रामन्तः) पापके स्थानोंको दूर करते हुए
(सर्ववीराः शतं हिमाः मदमे) सब वीरोंके समेत हम
सौ वर्ष तक आनन्दसे रहें ॥ ३०३ ॥

आचरणसे शुद्ध बनो, तेजस्वी बननेके लिये दिव्य विद्या-
को सीखो, पाप के आचरणको दूर करो और उत्तम वीर
पुत्रोंसे युक्त होकर सौ वर्षकी आयुको प्राप्त करो ।

मृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०४ आसीना मृत्युं नुदता सुधस्थे
अथ जीवासौ विदथमा वदेम ।

अथ. १२।२।३०

(आसीना मृत्युं नुदता) आसनादि करते हुए मृत्यु-
को दूर करो, (अथ जीवासः सुधस्थे विदथं आव-
देम) और यदि जीवोगे तो अपने घरमें यज्ञकी वात
करोगे ॥ ३०४ ॥

मृत्युको दूर करनेका यत्न करो । जीवित रह कर यज्ञ
करनेकी इच्छा करो । यज्ञसे दीर्घायु प्राप्त होती है ।

मृगुः । मृत्युः । त्रिष्टुप् ।

३०५ व्याकरोमि हविषाहमेतौ
तौ ब्रह्मणा व्यहं कल्पयामि ।
स्वधां पितृभ्यो अजरां कृणोमि
दीर्घेणायुषा समिमान्त्सृजामि ॥

अथर्व. १२।२।३२

(अहं एतौ हविषा व्याकरोमि) मैं इन दोनोंको
हविसे विशेष उन्नत करता हूँ (ब्रह्मणा अहं विकल्प-

यामि) ज्ञानसे मैं इसकी विशेष कल्पना करता हूँ,
(पितृभ्यः अजरां स्वधां कृणोमि) पितरोंके लिए मैं
अविनाशी स्वकीय धारक शक्ति बढ़ाता हूँ, (इमान् दीर्घेण
आयुषा सं सृजामि) इनको दीर्घायुसे युक्त करता हूँ
॥ ३०५ ॥

मैं यज्ञ करता हूँ, उस यज्ञमें उत्तम हविर्द्रव्योंका हवन
करता हूँ और उस यज्ञसे दीर्घ आयु प्राप्त करता हूँ ।

मृगुः । अग्निः । जगती ।

३०६ जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने
पितृणां लोकमपि गच्छन्तु ये मृताः ।

सुगार्हपत्यो वितपन्नरातिम्
उषामुषां श्रेयसीं धेह्यस्यै ॥ अथर्व. १२।२।४५

हे अग्ने ! (त्वं जीवानां आयुः प्र तिर) तू जीवोंकी
आयु निर्विघ्नता के साथ पार कर दे, तथा (ये मृताः
पितृणां लोकं अपि गच्छन्तु) जो मर गये हैं, वे पितृ-
लोकमें जावें । (सुगार्हपत्यः अरातिं वितपन्) उत्तम
गार्हपत्य अग्नि शत्रुको ताप देवे (उषां उषां अस्मै श्रेयसीं
धेहि) प्रत्येक उषःकाल इसके लिए कल्याणमय कर देवे
॥ ३०६ ॥

जीवित मनुष्योंको यज्ञका अग्नि दीर्घ आयु देवे । गार्ह-
पत्य अग्नि प्रत्येक घरमें प्रदीप्त होकर शत्रुको दूर करे ।
प्रत्येक उषःकाल इस यज्ञकर्ताको कल्याण देनेवाला हो ।

मृगुः । अग्निः । पंचपदा ककुम्भती ।

३०७ वाचस्पते पृथिवी नः स्योना
स्योना योनिस्तत्पा नः सुशेवा ।
इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु तं त्वा परमेष्ठिन्
पर्यशिरायुषा वर्चसा दधातु ॥

अथर्व. १३।१।१७

हे (वाचस्पते) वाणीके स्वामिन् अग्ने ! (नः
पृथिवी स्योना) हमारे लिए पृथिवी सुखकर हो, (योनिः
स्योना) घर कल्याणकारी हो, (नः तत्पा सुशेवा)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(६७)

हमारे लिए विछौने सुख कर हों, (इह एव नः सख्ये प्राणः अस्तु) यहीं पर हमारी मित्रतामें प्राण रहें, हे परमेश्वर ! (तं त्वा अग्निः आयुषा वचंसा परि दधातु) उस तुझे यह अग्नि आयु और तेजसे युक्त करे ॥ ३०७ ॥

पृथिवी, घर, बिछौना सुखकर हों । आपसकी मित्रतामें सुखकारक जीवन हो । हम दीर्घ आयु और तेजस्वितासे युक्त होकर यहां रहें ।

भृगुः (आयुष्कामः) । दर्भः । अनुष्टुप् ।

३०८ शतकाण्डो दुश्च्यवनः सहस्रपर्ण उत्तिरः ।
दुर्मो य उग्र ओषधिसं तं वध्नास्यायुषे ॥

अथर्व. १९।३२।१

(शतकाण्डः दुश्च्यवनः) सौ काण्डोंवाला, जिसका हटाना कठिन है, (सहस्रपर्णः) हजारों पत्तोंवाला (उत्तिरः) ऊपर आनेवाला (दर्भः यः उग्रः ओषधिः) दर्भ यह एक उग्र औषधि है (तं ते आयुषे वध्नामि) उसको तुझे आयु बढ़ानेके लिए बांधता हूं ॥ ३०८ ॥

दर्भ आयु बढ़ानेवाली औषधि है । उसको शरीर पर बांधनेसे आयु बढ़ती है ।

भृगुः । दर्भः । आस्तारपंक्तिः ।

३०९ तीक्ष्णो राजा विषासही रक्षोहा विश्वचर्षणिः ।
ओजो देवानां बलमुग्रमेतत्
तं तं वध्नामि जरसे स्वस्तये ॥ अथर्व १९।३३।४

(तीक्ष्णः राजा) वीर राजा (विषासहिः) शत्रुको हरा देनेवाला (रक्षो हा) राक्षसोंको मारनेवाला (विश्वचर्षणिः) सब मानवोंका हित करनेवाला (देवानां ओजः) देवोंका यह सामर्थ्य है (तं ते) उसे तेरे शरीर पर (जरसे स्वस्तये वध्नामि) वृद्धावस्थाकी प्राप्तिके लिए और कल्याणके लिए बांधता हूं ॥ ३०९ ॥

दर्भ शत्रुओंका पराभव करनेवाला, राक्षसोंको मारनेवाला, मानवोंका हित करनेवाला दैवी शक्तिसे युक्त है । उसको शरीरपर बांधनेसे वृद्धावस्था तककी दीर्घ आयु मिलती है और कल्याण होता है ।

भृगुः । दर्भः । अनुष्टुप् ।

३१० दिवि ते तूलमोषधे पृथिव्यामसि निष्ठितः ।
त्वया सहस्रकाण्डेनायुः प्र वर्धयामहे ॥

अथ. १९।३२।३

हे मोषधे ! (ते तूलं दिवि) तेरी चोटी आकाशमें है, (पृथिव्यां निष्ठितः असि) पृथ्वीमें तू स्थिर है, (त्वया सहस्रकाण्डेन) तुझ सहस्रकाण्डसे युक्तके द्वारा (आयुः प्र वर्धयामहे) हम अपनी आयु बढ़ाते हैं ॥ ३१० ॥

सहस्र काण्डोंसे युक्त दर्भको शरीर पर बांधनेसे आयु बढ़ती है ।

भृगुः । दर्भः । जगती ।

३११ सहस्रार्घः शतकाण्डः पर्यस्वान्
अपामग्निर्वीरुधां राजसूयम् ।
स नोऽयं दर्भः परि पातु विश्वतो
देवो मणिरायुषा सं सृजति नः ॥

अथर्व. १९।३३।१

(सहस्रार्घः) हजारों प्रकारसे मूल्यवान् (शतकाण्डः) सौ काण्डोंवाला (पर्यस्वान्) दूधसे परिपूर्ण (अपां अग्निः) जलोंमें रहनेवाला अग्नि (वीरुधां राजसूयं) औषधियोंका राजसूय यज्ञ जैसा (सः अयं दर्भः) वह यह दर्भमणि (नः विश्वतः परिपातु) हमें चारों ओरसे सुरक्षित रखे, (देवः मणिः नः आयुषा सं सृजति) यह दिव्य मणि हमें आयुके साथ संयुक्त करे ॥ ३११ ॥

दर्भका मणि शरीर पर बांधनेसे सब प्रकारसे संरक्षण मिलता है और आयुको बढ़ाता है ।

भृगुः । आंजनम् । अनुष्टुप् ।

३१२ आयुषोऽसि प्रतरणं विप्रं भेषजमुच्यसे ।
तदांजनं त्वं शतांते शमापो अमयं कृतम् ॥

अथर्व. १९।४४।१

(आयुषः प्रतरणं असि) तू आयुका बढ़ानेवाला है, (विप्रं भेषजं उच्यसे) तू विशेष स्फूर्तिवाला औषध कहलाता है, (तत् आंजनं । त्वं शतांते) वह है

(६८)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

जंजन ! तू शान्ति बढ़ानेवाला है, हे (आपः) जलो !
(अभयं शं कृतम्) मेरे लिए निर्भयता और सुख करो
॥ ३१२ ॥

जंजन एक उत्तम औषध है। वह शान्ति देता है और निर्भयता उत्पन्न करता है।

भृगुः । अग्निः । त्रिष्टुप् ।

३१३ प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः

सायं सायं सौमनसस्य दाता ।

वसोर्वसोर्वसुदान एधि

इन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम ॥

जयवं. १९५५।४

(प्रातः प्रातः) प्रति प्रातःकाल (अग्निः नः गृह-
पतिः) अग्नि हमारा गृहपति है, वह (सायं सायं
सौमनसस्य दाता) प्रत्येक सायंकालमें उत्तम मनका
दाता होता है, वह (वसोः वसोः वसुदानः) हमें प्रत्येक
उत्तम वस्तुका देनेवाला हो, तथा (एधि) बढे, (त्वा
इन्धानाः शतं हिमाः ऋधेम) तुझे प्रदीप्त करनेवाले
हम सौ वर्ष समृद्ध होते रहें ॥ ३१३ ॥

अग्निमें यज्ञ किया जाता है। प्रत्येक घरमें यह यज्ञाग्नि
होता है। इसको प्रदीप्त करके उसमें हवन करनेवाले सौ
वर्ष जीवित रहते हैं।

ऋषिः- उन्मोचनः आयुष्कामः । देवता- आयुः । अनुष्टुप् ।

३१४ आवतस्त आवतः परावतस्त आवतः ।

इहैव भव मा नु गा मा पूर्वाननु गाः

पितृन्सु वध्नामि ते दृढम् ॥ जय. ५।३०।१

(ते आवतः आवतः) तेरे समीपसे समीप और
(ते परावतः आवतः) तेरेसे बहुत दूर रहनेवाले (ते
अनु वध्नामि) तेरे प्राणको मैं दृढ बांधता हूं, (इह
एव भव) यहीं रह (पूर्वान् मा नु गाः) पूर्वजोंके
पीछे न जा, (मा पितृन् अनु गाः) पितरोंके पीछे न
जा क्योंकि दीर्घ मत मर ॥ ३१४ ॥

उन्मोचनः । आयुः । अनुष्टुप् ।

३१५ यत्ते माता यत्ते पिता

जामिर्भाता च सर्जतः ।

प्रत्यक् सेवस्व भेषजं

जरदष्टिं कृणोमि त्वा ॥ जयवं. ५।३०।५

(यत् ते माता) जिस औषधिको तेरी माता (यत् ते
पिता) जिसे तेरे पिता (जामिः भाता च सर्जतः)
तेरी बहिनें व भाई बनाते हैं, उस (भेषजं प्रत्यक्
सेवस्व) औषधिका ठीक प्रकारसे सेवन कर, (त्वा
जरदष्टिं कृणोमि) मैं तुझे वृद्धावस्था तक रहनेवाला
बनाता हूं ॥ ३१५ ॥

योग्य औषधिका योग्य रीतिसे सेवन करनेसे दीर्घ आयु
प्राप्त होती है।

उन्मोचनः । आयुः । अनुष्टुप् ।

३१६ इहैधि पुरुष सर्वेण मनसा सह ।

दूतौ यमस्य मानु गा अधि जीवपुरा इहि ॥

जय. ५।३०।६

हे पुरुष ! (सर्वेण मनसा सह इह एधि) सम्पूर्ण
मनके साथ यहां रह, (यमस्य दूतौ मा अनु गाः)
यमके दूतोंके पीछे मत जा, (जीव पुराः अधि इहि)
जीवकी पुरीमें निवास कर ॥ ३१६ ॥

अपने मनकी सम्पूर्ण शक्ति रोगनिवृत्तिमेंही विश्वाससे
लगाई जावे, कोई मनुष्य यम दूतोंके वशमें न जावे, और
इस शरीरमें- यर्थात् जीवात्माकी नगरीमें दीर्घकाल तक
रहे।

उन्मोचनः । आयुः । त्रिष्टुप् ।

३१७ मा विभेर्न मरिष्यसि जरदष्टिं कृणोमि त्वा ।

निरवोचमहं यक्ष्मभङ्गभ्यो अंगज्वरं तव ॥

जय. ५।३०।८

(मा विभेः न मरिष्यसि) मत डर, तू नहीं मरेगा,
(जरदष्टिं त्वा कृणोमि) वृद्ध अवस्था तक रहनेवाला
तुझे मैं करता हूं, (तव अंगेभ्यः अंगज्वरं यक्ष्मं अहं
निरवोचं) तेरे अंगोंसे शरीरके ज्वरको और क्षयरोगको
मैं बाहर निकाल देता हूं ॥ ३१७ ॥

हे मनुष्य ! तेरे शरीरसे रोगको मैं दूर करता हूं। तू
मत डर, तू मरेगा नहीं। मैं तुझे पूर्ण आयुतक जीवित
रहनेवाला बनाता हूं। मनमें ऐसा विश्वास रखनेसे दीर्घायु
प्राप्त होती है।

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(६१)

उन्मोचनः । आयुः । त्रिष्टुप् ।

३१८ अयमग्निरुपसद्य इह सूर्य उदेतु ते ।

उदेहि मृत्योर्गम्भीरात्

कृष्णाच्चित् तमसस्परि ॥ अथ. ५।३०।११

(अयं अग्निः उपसद्यः) यह अग्नि उपासनाके योग्य है, (इह ते सूर्यः उदेतु) यहां तेरे लिए सूर्य उदय होवे, (गम्भीरात् कृष्णात् तमसः मृत्योः चित्) गहरे काले अन्धकार रूपी मृत्युसे भी (परि उदेहि) परे उदयको प्राप्त हो ॥ ३१८ ॥

मृत्युसे दूर रहो । घरमें अग्नि प्रदीप्त करके उसमें हवन करो । सूर्यका उदय होनेपर उसके प्रकाशमें रहो । इससे मृत्युका भय दूर होगा और दीर्घ आयु मिलेगा ।

उन्मोचनः । आयुः । विराट् प्रस्तारपंक्तिः ।

३१९ प्राणेनाग्ने चक्षुषा सं सृजेमं

समीरय तन्वा सं बलेन ।

वेत्थामृतस्य मा नु गान्

मा नु भूमिगृहो भुवत् ॥ अथ. ५।३०।१४

हे अग्ने ! (प्राणेन चक्षुषा सं सृजे) प्राण और चक्षुसे संयुक्त कर (तन्वा बलेन इमं सं ईरय) शरीर और बलसे इसको प्रेरित कर (अमृतस्य वेत्थ) तू अमृतको जानता है, (मा नु गात्) तेरा प्राण न चला जावे, (भूमिगृहः मा नु भुवत्) भूमिको घर करनेवाला न हो अर्थात् मरकर मिट्टीमें न मिल ॥ ३१९ ॥

‘ भूमिगृह ’ भूमिमें गाढा हुआ न हो । अर्थात् तू न मर । प्राण, आँख शरीर इनके बल पढाओ और दीर्घायु रूपी अमरत्वको प्राप्त करो ।

उन्मोचनः । आयुः । अनुष्टुप् ।

३२० मा ते प्राण उपदसन्

मो अपानोऽपि धायि ते ।

सूर्यस्त्वाधिपतिर्मृत्योरुदायच्छतु रश्मिभिः ॥

अथ. ५।३०।१५

(ते प्राणः मा उपदसन्) तेरा प्राण नष्ट न होवे, (ते अपानः मो अपि धायि) तेरा अपान न आच्छा-

दित होवे, (अधिपतिः सूर्यः रश्मिभिः त्वा उत् आयच्छतु) अधिपति सूर्य किरणोंसे तुझे ऊपर उठावे ॥ ३२० ॥

भावायं— तेरा प्राण और अपान तेरे शरीरमें दृढतासे रहे, सूर्य अपनी किरणोंसे तुझे ऊपर उठावे अर्थात् जीवन देवे ।

उन्मोचनः । आयुः । त्र्यवसाना षट्पदा जगती ।

३२१ अयं लोकः प्रियतमो देवानामपराजितः ।

यस्मै त्वमिह मृत्यवे दिष्टः पुरुष जज्ञिषे ।

स च त्वा अनु हयामसि मा

पुरा जरसो मृथाः ॥ अथ. ५।३०।१७

(अयं अपराजितः लोकः देवानां प्रियतमः) यह पराजित न होनेवाला लोक देवोंको प्यारा है, (यस्मै मृत्यवे दिष्टः पुरुषः त्वं इह जज्ञिषे) जिस लोककी मृत्युको निश्चित प्राप्त होनेवाला तू पुरुष यहां उत्पन्न होता है, (सः च त्वा अनु हयामसि) वह तुझे बुलाता हूं, और कहता हूं, कि (जरसः पुरा मा मृथाः) बुढ़ापेसे पहिले मत मर ॥ ३२१ ॥

तू देवोंका प्रिय है, यद्यपि तू इस मृत्युलोकमें जन्म लेनेके कारण मरनेवाला है, तथापि हम यह ही कहते हैं कि तू बुढ़ावस्थाके पहिले न मर ।

द्रुहणः । निऋतिः । जगती ।

३२२ यत् ते देवी निऋतिराबन्ध

दाम ग्रीवास्वविमोक्षं यत् ।

तत्ते विष्याम्यायुषे वर्चसे बलाय

अदोमदमन्नमाद्दि प्रसूत ॥ अथ. ६।६३।१

(देवी निऋतिः) दुर्गतिने (यत् यत् अविमोक्षं दाम) जो जो सहज ही में न छूटनेवाला बन्धन (ते ग्रीवासु आ बन्ध) तेरी गर्दन में बांधा है, वह (ते आयुषे बलाय वर्चसे विष्यामि) तेरी आयु, बल और तेजस्वित्ताके लिए मैं खोलता हूं । अब तू (प्रसूतः अदोमदं अन्नमाद्दि) आगे बढ़कर हर्षदायक अन्नका तू भोग कर ॥ ३२२ ॥

(७०)

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

तेरे गलेमें मृत्युका पाश बांधा है। उसको मैं खोकता हूँ। जब तू मृत्युपाशसे छूटा है। तू जायु बल और तेज-स्वित्ता प्राप्त कर। और दीर्घायु होकर यहाँ रह।

जगत्स्यः । मेखला । अनुष्टुप् ।

३२३ यां त्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिवेधिर ।

सा त्वं परि ष्वजस्व मां

दीर्घायुत्वाय मेखले ॥ अथ. ६।१३३।५

(यां त्वा पूर्वे भूतकृतः ऋषयः परिवेधिर) जिस तुझे पूर्वकालके भूतोंको बनानेवाले ऋषि बांधते रहे, (सा त्वं दीर्घायुत्वाय मां परिष्वजस्व) वह तू दीर्घायुके लिए मुझे जालिगन दे ॥ ३२३ ॥

भावार्थ-- ऋषिलोग इस मेखलाको बांधते हैं, अतः वह मेखला हमें दीर्घायु प्रदान करे।

वामदेवः । दधिकाः । अनुष्टुप् ।

३२४ दधिकावर्णो अकारिषं,

जिष्णोरश्वस्य वाजिनः ।

सुरभि नो सुखा करत्प्र ण

आयूषि तारिषत् ॥ अथ. २०।१३७।३

(जिष्णोः वाजिनः दधिकावर्णः अश्वस्य) विजयी, बलवान् दही जैसे सफेद घोड़ेकी स्तुति (अकारिषं) की वह (नः सुखा सुरभि करत्) हमारे सुखोंको सुगंधित करे (नः आयूषि तारिषत्) हमारी आयुओंको बढ़ावे ॥ ३२४ ॥

मुखमें सुगंधि रहनेसे दीर्घ आयु होती है। तथा मुखमें दुर्गंधि होनेसे आयु क्षीण होती है।

नारायणः । पुरुषः । अनुष्टुप् ।

३२५ यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।

तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः

प्राणं प्रजां ददुः ॥ अथ. १०।२।२९

(यः वै अमृतेन आवृतां तां ब्रह्मणः पुरं वेद) जो निश्चयसे अमृतसे परिपूर्ण उस ब्रह्मकी नगरीको जानता है, (तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माः च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः) उसको ब्रह्म और इतर देव चक्षु प्राण दीर्घायु और सन्तान देते हैं ॥ ३२५ ॥

अपना शरीर अमृतसे भरपूर करी ब्रह्मकी नगरी है।

ऐसा जो जानता है उसको उत्तम दृष्टी, प्राण अर्थात् दीर्घ आयु और उत्तम संतान प्राप्त होते हैं।

नारायणः । पुरुषः । अनुष्टुप् ।

३२६ न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा ।

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥

अथ. १०।२।३०

(यस्याः पुरुषः उच्यते ब्रह्मणः पुरं य वेद) जिसके कारण आत्माको पुरुष कहते हैं, उस ब्रह्मकी नगरीको जो जानता है, (तं जरसः पुरा चक्षुः न जहाति, न वै प्राणः) उसे वृद्धावस्थाके पूर्व चक्षु छोड़ता नहीं और न प्राण छोड़ता है ॥ ३२६ ॥

इस शरीरको यह ब्रह्मकी देवेंनगरी है ऐसा जो जानता है उसके प्राण वृद्ध आयुके पूर्व उसे नहीं छोड़ते हैं।

कुत्सः । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

३२७ अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू

रसेन तृप्तो न कुतश्चनो नः ।

तमेव विद्वान् विभाय मृत्योः

आत्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ अथ. १०।८।४४

(अकामः धीरः अमृतः स्वयंभूः) निष्काम, धीर, जमर, स्वयंभू (रसेन तृप्तः) रससे सन्तुष्ट वह देव (न कुतश्चन ऊनः) कहींसे भी न्यून नहीं है, (तं एव विद्वान् मृत्योः न विभाय) उससे जाननेवाला ज्ञानी मृत्युसे डरता नहीं क्योंकि (आत्मानं धीरं अजरं युवानं) वही धीर अजर युवा आत्मा है ॥ ३२७ ॥

अपना आत्मा निष्काम, बुद्धिमान, जमर, स्वयंभू, सदा तृप्त और व्यापक है ऐसा जो जानता है, उसको मृत्युका भय प्राप्त नहीं होता। क्योंकि वह अपने आत्माको बुद्धिमान, जरारहित और तरुण जानता है।

सूर्यासावित्री । आत्मा । त्रिष्टुप् ।

३२८ स्थोनं भुवं प्रजायै धारयामि

तेऽस्मान् देव्याः पृथिव्या उपस्थे ।

तमा तिष्ठानुमाद्या सुवर्चा दीर्घ

त आयुः सविता कृणोतु ॥ अथ. ११।१।४७

(देव्याः पृथिव्याः उपस्थे) पृथ्वी देवीके पास (ते प्रजायै स्थोनं भुवं अस्मान्) तेरी सन्तानके लिए सुख-दायी स्थिर पथर जैसा (धारयामि) जाधार करता हूँ,

दीर्घायु कैसे प्राप्त हो ?

(७१)

(तं आतिष्ठ) उस पर खड़ा रह (आनुमाद्याः) जान-
न्दित हो, (सुवर्चाः) उत्तम तेजसे युक्त हो, और
(सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु) सविता तेरी जायु
लम्बी बनावे ॥ ३२८ ॥

सूर्य प्रकाश मनुष्यकी जायुको दीर्घ बनाता है ।

सूर्या सावित्री । आत्मा । अनुष्टुप् ।

३२९ पुनः पत्नीमाग्निरेदादायुषा सह वर्चसा ।

दीर्घायुरस्या यः पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥

अथ. १४।२।२

(आयुषा वर्चसा सह) दीर्घायुष्य और तेजके साथ
(अग्निः पत्नी पुनः अदात्) अग्निने पत्नीको पुनः प्रदान
किया । (अस्याः यः पतिः) इसका जो पति है, वह
(दीर्घायुः शरदः शतं जीवाति) दीर्घायु बनकर सौ
वर्ष जीवित रहता है ॥ ३२९ ॥

सूर्यासावित्री । दम्पती । अनुष्टुप् ।

३३० इयं नार्युपभूते पूल्यानावपत्तिका ।

दीर्घायुरस्तु मे पतिर्जीवाति शरदः शतम् ॥

अथ. १४।२।६३

(इयं नारी पूल्यानि आवपत्तिका) यह स्त्री फूले
हुए धान्यकी जाहूति देती हुई (उपभूते) कहती है,
कि (मे पतिः दीर्घायुः अस्तु) मेरा पति दीर्घायु होवे,
वह (शरदः शतं जीवाति) सौ वर्ष जीवित रहे ॥ ३३० ॥

सूर्या सावित्री । दम्पती । अनुष्टुप् ।

३३१ इहेमाविन्द्र सं नुद चक्रवाकेव दम्पती ।

प्रजयैनौ स्वस्तकौ विश्वमायुर्व्यश्नुताम् ॥

अथ. १४।२।६४

हे इन्द्र ! (चक्रवाका इव) चक्रवा चक्रवीके समान
(इमौ दम्पती) इस पति पत्नीको इस संसारमें प्रेरित
कर, (एनौ सु-अस्तकौ प्रजया) ये दोनों उत्तम घर-
वाले होकर सन्तानके साथ (विश्वं आयुः व्यश्नुताम्)
सब जायुका उपभोग करें ॥ ३३१ ॥

सूर्या सावित्री । दम्पती । अनुष्टुप् ।

३३२ संभले मलं सादयित्वा

कम्बले दुरितं वयम् ।

अभूम यज्ञियाः शुद्धाः

प्र ण आयूषि तारिषत् ॥ अथर्व. १४।२।६७

(संभले मलं सादयित्वा) संभलमें मल डालकर
और (दुरितं कम्बले) पापको कम्बलमें रखकर (वयं
यज्ञियाः शुद्धाः अभूम) हम यज्ञ करने योग्य शुद्ध हों,
वह (नः आयूषि प्रतारिषत्) हमारी जायुओंको दीर्घ
बनावे ॥ ३३२ ॥

शुद्ध और पवित्र होनेसे जायु दीर्घ होती है ।

सूर्यासावित्री । दम्पती । त्रिष्टुप् ।

३३३ प्र बुध्यस्व सुबुधा बुध्यमाना

दीर्घायुत्वाय शतशारदाय ।

गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासौ

दीर्घं त आयुः सविता कृणोतु ॥

अथ. १४।२।७५

(सुबुधा बुध्यमाना) उत्तम ज्ञानयुक्त जागती रहकर
(शतशारदाय दीर्घायुत्वाय प्रबुध्यस्व) सौ वर्षके
दीर्घ जीवनके लिए जागती रह, (गृहान् गच्छ) अपने
पतिके घरको जा, (यथा गृहपत्नी असः) गृहस्वामिनी
जैसी बनकर रह, (सविता ते आयुः दीर्घं कृणोतु)
सविता तेरी जायु दीर्घ करे ॥ ३३३ ॥

सूर्य तेरी जायु दीर्घ करे ।

सव्यः । इन्द्रः । जगती ।

३३४ य उदचीन्द्र देवगोपाः

सखायस्ते शिवतमा असाम ।

त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा

द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥

अथ. २०।२।१।११

हे इन्द्र ! (उदचि) वेदमंत्रके पाठमें (ये देवगोपाः)
तुम देवके द्वारा सुरक्षित हुए जो (ते सखायाः) जो तेरे
मित्र हम हैं, वे (शिवतमाः असाम) उत्तम कल्याणसे
युक्त हों, (त्वां स्तोषामः) हम तेरी स्तुति करते हैं,
(त्वया सुवीराः) तेरे साथ रहनेसे उत्तम वीर पुत्र-
पौत्रोंसे युक्त होकर हम (द्राघीयः आयुः प्रतरं
दधानाः) दीर्घ जायुको अधिक लम्बी बनाकर धारण
करनेवाले हों ॥ ३३४ ॥

मनुष्य अपनी दीर्घ जायुको जति दीर्घ बनाकर धारण
करे और जानंदसे रहे ।

स्वाध्यायमण्डलके प्रकाशन

यजुर्वेदका सुबोध भाष्य

अध्याय	१ श्रेष्ठतम कर्मका आदेश	१.५०	.१२
अध्याय	३० मनुष्योंकी सच्ची उन्नतिका सच्चा साधन	२)	.१९
अध्याय	३२ एक ईश्वरकी उपासना	१.५०	.१२
अध्याय	३६ सच्ची शांतिका सच्चा उपाय	२.५०	.१२
अध्याय	४० आत्मज्ञान-ईशोपनिषद्	२)	.३७

अथर्ववेदका सुबोध भाष्य

(१ से २० काण्ड पांच जिल्दोंमें)

इनमें मंत्र, अर्थ, स्पष्टीकरण और विषयवार वैदिक सूक्ति-योंका संग्रह है। हर एक पाठक इनसे लाभ उठा सकता है।

प्रथम विभाग	१ से ३ काण्ड	१०)	२)
द्वितीय विभाग	४ से ६ काण्ड	१०)	२)
तृतीय विभाग	७ से १० काण्ड	१०)	२)
चतुर्थ विभाग	११ से १८ काण्ड	१०)	२)
पञ्चम विभाग	१९ और २० काण्ड	(छप रहा है)	१०)

एकदम सब भाग लेनेवालोंको पांचों भागोंका मूल्य ४०) रु. होगा। डा. व्य. पृथक्.

सामवेद (कौथुम शास्त्रीयः)

सामवेदके गायनके ये ग्रंथ हैं। इनके गायन करनेसे अद्भुत मानस शान्ति प्राप्त होती है।

१ ग्रामिणेय (वेद्य, प्रकृति)

गानात्मकः-आरण्यक गानात्मकः

प्रथमः तथा द्वितीयो भागः ५)

२ ऊहगान— (दशरात्र पर्व) १) .२५

(ऋग्वेदके तथा सामवेदके मंत्रपाठोंके साथ

६७२ से ११५२ गानपर्यंत)

३ ऊहगान— (दशरात्र पर्व) .५० .१२

(केवल गानमात्र ६७२ से १०१६)

उपनिषद् भाष्य ग्रंथमाला

इन उपनिषद्‌ोंके भाष्योंमें यह बताया है कि यहां ब्रह्मज्ञानके साथ साथ उत्तम अध्यात्मविधित मानवी व्यवहार अर्थात् वैयक्तिक, सामाजिक, राजकीय तथा जागतिक व्यवहार निर्दोष

रीतिसे किस तरह सिद्ध हो सकता है। यह सब तत्त्वज्ञान इन भाष्योंमें है। यह किसी अन्य ग्रंथोंमें नहीं मिलेगा। इसलिये सबको ये ग्रंथ पढ़ने आवश्यक हैं।

१ ईश उपनिषद्	२)	.३७
२ केन उपनिषद्	१.७५	.३१
३ कठ उपनिषद्	१.५०	.२५
४ प्रश्न उपनिषद्	१.५०	.२५
५ मुण्डक उपनिषद्	१.५०	.२५
६ माण्डूक्य उपनिषद्	.५०	.१२
७ ऐतरेय उपनिषद्	.७५	.१९
८ तैत्तिरीय उपनिषद्	१.५०	.२५
९ श्वेताश्वतर उपनिषद् (छप रहा है)		

श्रीमद्भगवद्गीता

इस गीता भाष्यमें अनेक गूढ़ विषयोंका स्पष्टीकरण है। राज्यव्यवहारके आध्यात्मिक संकेत यहां स्पष्ट रीतिसे बताये हैं। (हिंदी-गुजराती-मराठी-अंग्रेजी भाषाओंमें मिलेगी।)

१ पुरुषार्थबोधिनी टीका (एक जिल्दमें)— २१.५० २.५०

„ (तीन जिल्दोंमें) अध्याय १ से ५ ५) १.२५

„ अध्याय ६ से १० ५) १.२५

„ अध्याय ११ से १८ ५) १.२५

२ श्रीमद्भगवद्गीता लेखमाला भाग १-२ और ३ ३.७५ १.२५

३ भगवद्गीता श्लोकार्थसूची .७५ .१९

४ गीताका राजकीय तत्त्वलोचन २) .३७

५ श्रीमद्भगवद्गीता (केवल श्लोक और अर्थ) .५०) .१९

६ श्रीमद्भगवद्गीता (प्रथम भाग) लेखक श्री गणेशानंदजी १) .२५

गो-ज्ञान-कोश

गो-ज्ञान-कोश (प्रथम भाग) ६) १.५०

गो-ज्ञान-कोश (द्वितीय भाग) ६) १.५०

गौके विषयमें वेदमंत्रोंमें जो उत्तम उपदेश हैं वह सब इन दो विभागोंमें संग्रहित किया है। जो गौके विषयमें वेदका अमूल्य उपदेश जानना चाहते हैं वे इन भागोंको अवश्य पढ़ें।

लन्नी— स्वाध्याय मण्डल, पोस्ट- ' स्वाध्याय मण्डल (पारडी) ' पारडी [जि. सुत]

स्वाध्यायमण्डलके वैदिक प्रकाशन

वेदोंकी संहिताएं

‘वेद’ मानवधर्मके आदि और पवित्र ग्रंथ हैं। हर एक आय धर्मोंको अपने संग्रहमें इन पवित्र ग्रंथोंको अवश्य रखना चाहिये।

सूक्ष्म अक्षरोंमें मुद्रित	मूल्य	पा.व्य.
१ ऋग्वेद संहिता	१०)	१)
२ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	२	.५०
३ सामवेद संहिता	२)	.५०
४ अथर्ववेद संहिता	६)	.७५
बड़े अक्षरोंमें मुद्रित		
५ यजुर्वेद (वाजसनेयि) संहिता	४)	.५०
६ सामवेद संहिता	३)	.५०
७ यजुर्वेद काण्व संहिता	५)	.७५
८ यजुर्वेद तैत्तिरीय संहिता	१०)	२
९ यजुर्वेद मैत्रायणी संहिता	१०)	१.२५
१० यजुर्वेद काठक संहिता	१०)	१.२५

दैवत-संहिता

एक एक देवताके मंत्रोंका अध्ययन करनेसे वेदमंत्रोंके अर्थका ज्ञान ठीक तरह तथा शीघ्र हो सकता है। इसलिये ये देवता-मंत्र-संग्रह मुद्रित किये हैं।

१ दैवत संहिता- (प्रथम भाग)

अग्नि-इन्द्र-सोम मरुदेवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके समेत एक जिल्दमें)	११)	२)
१ अग्नि देवता मंत्रसंग्रह	६)	१)
२ इन्द्र देवता मंत्रसंग्रह	७)	१)
३ सोम देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
४ मरुदेवता मंत्रसंग्रह	२)	.५०

२ दैवत संहिता- (द्वितीय भाग)

अश्विनौ आयुर्वेद प्रकरण-रुद्र-उषा-अदिति-विश्वेदेव।

इन देवताओंके मंत्रसंग्रह।

(अनेक सूचियोंके साथ एक जिल्दमें)	११)	२)
१ अश्विनौ देवता मंत्रसंग्रह	३)	.५०
२ आयुर्वेद प्रकरणम् मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ रुद्रदेवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
४ उषा देवता मंत्रसंग्रह	१.७५	.५०
५ अदिति: आदित्याश्च मंत्रसंग्रह	३)	१)
६ विश्वेदेवा: मंत्रसंग्रह	५)	१)

३ दैवत संहिता- (तृतीय भाग)

४ उषा देवता (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ) ४)	.५०
५ अश्विनौ देवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ) ४)	.५०
६ मरुदेवताका मंत्रसंग्रह (अर्थ तथा स्पष्टीकरणके साथ) ५)	.७५

ऋग्वेदका सुबोध भाष्य

(अर्थात् ऋग्वेदमें लाये हुए ऋषियोंके दर्शन।)

१ से १८ ऋषियोंका दर्शन (एक जिल्दमें)	१६)	२)
--------------------------------------	-----	----

(पृथक् पृथक् ऋषिदर्शन)

१ मधुच्छन्दा ऋषिका दर्शन १)	.२५
२ मेघातिथि " " २)	.२५
३ शुनःशेष " " १)	.२५
४ हिरण्यस्तूप " " १)	.२५
५ काण्व " " २)	.२५
६ सत्य " " १)	.२५
७ नोधा " " १)	.२५
८ पराशर " " १)	.२५
९ गोतम " " २)	.३७
१० कुत्स " " २)	.३७
११ त्रित " " १.५०	.३१
१२ संवनन " " .५०	.१२
१३ हिरण्यगर्भ " " .५०	.१२
१४ नारायण " " १)	.२५
१५ बृहस्पति " " १)	.२५
१६ वागाम्भृणी " " १)	.२५
१७ विश्वकर्मा " " १)	.२५
१८ सप्त ऋषि " " .५०	.१२
१९ वसिष्ठ " " ७)	१)
२० भरद्वाज " " ७)	१.५०

मन्त्री— ‘स्वाध्याय मण्डल, पोस्त— ‘स्वाध्याय मण्डल (पारवी)’ [जि. सूत्र]

वेदके व्याख्यान

वेदोंमें माना प्रकारके विषय हैं, उनको प्रकट करनेके लिये एक एक व्याख्यान दिया जा रहा है। ऐसे व्याख्यान २०० से अधिक होंगे और इनमें वेदोंके नाना विषयोंका स्पष्ट बोध हो जायगा।

मानवी व्यवहारके दिव्य संदेश वेद दे रहा हैं, उनमें लेनेके लिये मनुष्योंको तैयार रहना चाहिये। वेदके उपदेश जाचरणमें जानेसे ही मानवोंका कल्याण होना संभव है। इसलिये वे व्याख्यान हैं। इस समय तक वे व्याख्यान प्रकट हुए हैं।

- १ मधुच्छन्दा ऋषिका अग्निमें आदर्श पुरुषका दर्शन।
- २ वैदिक अर्थव्यवस्था और स्वामित्वका सिद्धान्त।
- ३ अपना स्वराज्य।
- ४ श्रेष्ठतम कर्म करनेकी शक्ति और सौ वर्षोंकी पूर्ण दीर्घायु।
- ५ व्यक्तिवाद और समाजवाद।
- ६ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।
- ७ वैयक्तिक जीवन और राष्ट्रीय उन्नति।
- ८ सप्त व्याहृतियाँ।
- ९ वैदिक राष्ट्रगीत।
- १० वैदिक राष्ट्रशासन।
- ११ वेदोंका अध्ययन और अध्यापन।
- १२ वेदका श्रीमद्भागवतमें दर्शन।
- १३ प्रजापति संस्थाद्वारा राज्यशासन।
- १४ जैत, द्वैत, अद्वैत और एकत्वके सिद्धान्त।
- १५ क्या यह संपूर्ण विश्व मिथ्या है?
- १६ ऋषियोंने वेदोंका संरक्षण किस तरह किया?
- १७ वेदके संरक्षण और प्रचारके लिये आपने क्या किया है?
- १८ देवत्व प्राप्त करनेका अनुष्ठान।
- १९ जनताका हित करनेका कर्तव्य।
- २० मानवके दिव्य वेदकी साक्ष्यता।
- २१ ऋषियोंके तपसे राष्ट्रका निर्माण।
- २२ मानवके मन्दरकी श्रेष्ठ शक्ति।
- २३ वेदमें दशाने विविध प्रकारके राज्यशासन।
- २४ ऋषियोंके राज्यशासनका आदर्श।
- २५ वैदिक समयकी राज्यशासन व्यवस्था।
- २६ रक्षकोंके राक्षस।
- २७ अपना मन शिवसंकरूप करनेवाला हों।
- २८ मनका प्रचण्ड वेग।
- २९ वेदकी दैवत संहिता और वैदिक सुभाषितोंका विषयवार संग्रह।
- ३० वैदिक समयकी लेनाव्यवस्था।
- ३१ वैदिक समयके सैन्यकी शिक्षा और रचना।
- ३२ वैदिक देवताओंकी व्यवस्था।
- ३३ वेदमें नगरोंकी और वनोंकी संरक्षण व्यवस्था।
- ३४ अपने शरीरमें देवताओंका निवास।
- ३५, ३६, ३७ वैदिक राज्यशासनमें आरोग्य-मन्त्रोंके कार्य और व्यवहार।
- ३८ वेदोंके ऋषियोंका नाम और उनका महत्त्व।
- ३९ रुद्र देवताका परिचय।
- ४० रुद्र देवताका स्वरूप।
- ४१ उषा देवताका परिचय।
- ४२ आदित्योंके कार्य और उनकी लोकसेवा।
- ४३ विश्वदेवा देवताका परिचय।
- ४४ वेदमन्त्रोंका भाव समझनेमें प्राचीन ऋषियोंका दृष्टिकान।
- ४५ पुरुषमें ब्रह्मदर्शन।
- ४६ वेदभाष्योंका तुलनात्मक अनुशीलन।
- ४७ वेद हमारे धर्मकी पुस्तक है।
- ४८ एक मन्त्रके अनेक अर्थ।

आगे व्याख्यान प्रकाशित होते जायेंगे। प्रत्येक व्याख्यानका मूल्य (२) रु० माने रहेगा। प्रत्येकका डा. भव. २) हो जाना रहेगा। इस व्याख्यानोंका एक पुस्तक सजिद लेना हो तो उस सजिद पुस्तकका मूल्य ५) होगा और डा. भव. १॥) होगा।

अग्री — स्वाध्यायमण्डल, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारसी)' पारसी [मि. सुरत।

इस और अगली- द. श्री. सातवलेकर, भारत-मुम्बई, पोस्ट- 'स्वाध्यायमण्डल (पारसी)' पारसी [मि. सुरत।